जैनमित्रके तेरहवें वर्षका उपहार नं० ३।



श्री वीतरागाय नमः।

अनुभवानन्द।

श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रशादजीद्वारा सम्पादित

जैनमित्रसे उद्धृत

और

जैनमित्र कार्यालय, बम्बईद्वारा

बम्बईवैभव प्रेसमें मुद्रित।

प्रथमावृत्ति } श्री वीर नि० सं० २४३८ सन् १९१२ ईस्वी { मूल्य ।)



Editor

SITALPRASAD BRAHMCHARI,

PUBLISHER

Jain-Mitra Karyalaya,

HIRABAG, GIRGAON, BOMBAY



Printed by
C S DEOLE
at his Bombay Vaibhav Press
1 Sadashiv Lane, Girgaon,
BOMBAY

प्रस्तावना।

एको मे शाश्वतात्मा सुखमसुख भजो ज्ञान दृष्टि स्वभावो।
नान्यत् किंचिन्निजं मे तनुधन करण भ्रातृ भार्या सुखादि॥
कर्मोद्भूतं समस्तं चपलमसुखदं तत्र मोहो मुधा मे।
पर्यालोच्येति जीव स्वहितमवितथं मुक्ति मार्ग श्रयत्वम्॥४१६॥

(अमितिगति)

श्रीअमितिगति आचार्य्य कहते है, "रे जीव! तू ऐसा चिन्तवन कर कि मै एक हू, अविनाशी आत्मा हू, सुखदुखको आप ही भोगने वाला हू तथा ज्ञान दर्शन स्वभावका धारी हू। शरीर, धन, इन्द्री, भाई, स्त्री, जगत, सुख आदि कोई भी अन्य जीव मेरी नहीं है, क्योंकि ये सर्व जगतके पदार्थ कर्मसे उत्पन्न, चचल (क्षणभगुर) और अन्तमें दु खदाई है। इनमें मोह करना मेरी मूर्खता है और तू अपने कल्याण करनेवाले सच्चे मोक्ष-मार्गका आश्रय कर।"

प्रिय सत्य मुमुक्षुजनो! मोक्ष अपने ही आत्माका शुद्ध निरजन असल स्वभाव है। मोक्ष रूप आत्मा अत्यन्त स्वाधीन सुखका धाम है, साक्षात् शुद्धोपयोगका स्वामी है, साक्षात् स्वसमयरूप है। ऐसे निजस्वरूपके लाभके लिये स्वसमयकी भावना ही साधनरूप है, जिसको अनुभवरसका आनन्द कहते हैं।

मुक्तिका उपाय न प्राणायाम है और न हठयोग है। मुक्तिका सच्चा उपाय जिस तिस प्रकार राग-द्वेषको दूरकर वीतराग परिणति करके शुभ नाम व शुभ स्थापना द्वारा निज आत्माके गुणोंका अनुभव

करना है । यद्यपि बहुतसे लोग आत्मीक रसके आस्वादको लेना चाहते है, परतु उनको साधु सगतिकी अप्राप्तिसे तथा स्याद्वादनय-द्वारा सगठित पदार्थ मालिकाके ज्ञानका अनुभव न होनेसे वे अपनी भावनाको पूरी नहीं कर सक्ते है ।

आत्मानुभवके रसिक मुमुक्षुजनोंके हितार्थ ही हमने अपने उस तुच्छ अनुभवके द्वारा जो हमको श्रीसमयसारजी, श्रीपरमात्मप्रकाशजी तथा अनुभवप्रकाशजी आदि अध्यात्मिक ग्रन्थोंके बाँचनेसे हुआ है, जैनमित्रके अन्दर ता० २१ मई सन् १९०९ के अकसे ले ता० १० अक्टूबर १९११ के अक तक **अनुभवानन्द** नामके लेखोंको प्रकाशित किया था। अब हमारे पास बहुतसे भाइयोंकी प्रेरणा हुई कि इन लेखों-को पुस्तकाकार निकाला जाय, इससे यह पुस्तक प्रगट की गई है।

पाठकोंको उचित है कि इसके हरएक लेखको एकान्तमें बैठकर पुन पुन कई बार बाँचें। जब बाचते २ उपयोग थिर होगा तब परमअनुभवरसका स्वाद आवेगा । यदि शीघ्रतासे इस पुस्तकको पढा जायगा तो आनन्दका मिलना कठिन होगा ।

यदि प्रमाद व अज्ञानवश इन लेखोंके सगठनमें कोई अशुद्धिया रह गई हों तो विद्वज्जन हमें क्षमा करते हुए सुधार कर पढें तथा हमें सूचना दें ताकि द्वितीयावृत्तिमें सुधार दी जाय।

प्रूफ संशोधनमें जो कुछ अशुद्धया रह गई थीं, उनका शुद्धाशुद्धि पत्र इस पुस्तकके शुरु में ही लगा दिया गया है, पाठकगण, पहले उसके अनुसार अशुद्धिया सुधार लेवें फिर पुस्तकको पढना शुरू करें।

मुलतान शहर
ता० ८–९–१९१२ ई० } शीतलप्रशाद ब्रह्मचारी ।

४१	इन्द्रियमार्गणाकी ओछी शक्ति	९३
४२	कायमार्गणामें आकुलता	९६
४३	मैं अकाय हू	९८
४४	योगमार्गणामें डगमगाहट	१००
४५	वेदमार्गणाकी आकुल्ता	१०२
४६	कषायोंकी वचकता	१०३
४७	ज्ञानमार्गणाकी महत्त्वता	१०६
४८	सयममार्गणामें स्वरूप विकाश	१०८
४९	दर्शन मार्गणाका अवलोकन	११०
५०	लेश्या मार्गणामें भवभ्रमण	११३
५१	भव्याभव विकल्प न करना	११५
५२	सम्यक्त मार्गणाकी झलक	११८
५३	सज्ञी असज्ञीकी कल्पना	१२०
५४	आहारक मार्गणाका विकल्प	१२२
५५	पच व्रतोंकी छटा	१२४
५६	अनुभव सुख ही सार है	१२६

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ संख्या	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	सरि	सारी
२	१	स मय	समय
२	४	मानी	मानि
१३	१५	मोहाघ	मोहांध

२०	६	सम्मिलित	सम्मलित
२२	१०	मेरा	इसका
२२	१४	मेरा	इसका
२६	३	सतोंके	सतोंको
२६	१५	अपने	अपना
२७	१०	कर	कर
३२	१२	आलम्ब	आलम्ब
३३	१०	बाह्यत्म्य	बाह्य तप
३६	३	तपही	तपन ही
३७	९	अज्ञानुसार	आज्ञानुसार
३८	१०	कालपर	काल पर
३९	१५	खे	खो
६०	१०	सामयिकका	सामायिकका
६५	२०	बञ्चित	बञ्चित
६६	६	सद्दश्य	सद्दश
६८	११	पदवाकी	पदवीको
६८	१४	बड	वडा
६९	८	अब	तब
७०	१०	कुलटाके	कुलटारूपी
७२	१२	लौ	लौ
७३	२०	अन्यवाधमई	अन्यावाधमई
७४	२	तौ	तो

७४	१४	शात	शात
७७	१३	जागा	जगा
७८	१९	दृष्टी	दृष्टि
७९	११	सम्यक्ता	सम्यक्तता
८१	८	दृष्टी	दृष्टि
८१	१२	सम्यक्दृष्टी	सम्यक्दृष्टि
८६	३	बेसुद्ध	बेसुध
८७	१५	को शातकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें शातकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलन में इस जापी आत्मको	को शातकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें इस जापी आत्माको
८८	२०	को	की
९५	५	८००	८०००
९६	१७	कार्यों	कार्यों
९८	१	घोर	घारे
१०३	८	सम्यक्दृष्टि	परमसम्यक्दृष्टि
१०३	९	पहचानते	मनन करते
१०३	१५	कृतकृत्यका	कृतकृत्यताका
१०४	७	कषाय सब	कषाय व सब
१०४	७	योद्धाओंको	योद्धाओंका

१०७	१४	६/३ द्विरूपवर्गधारा १.२	६/— द्विरूपवर्गधार
१०८	१७	प्रतिभा समान	प्रतिभासमान
१११	६	उपयोगका	उपयोगकी
११४	१४	कर्मवद	कर्मबध
११८	८	कारणलब्धिद्वारा	करणलब्धिद्वारा
१२३	२०	जीवका	जीवको
१२४	१४	आहरको	आहारको
१२४	१८	श्रभूपी	स्वरूपी
१२६	७	काष्ठा	काष्ठ
१२६	१३	व्यवहारक	व्यवहारिक
१२८	६	झलकाती	झलकाता

श्रीवीतरागाय नमः ।

अनुभवानन्द ।

अगम दुर्ग ।

(१)

मोहज्वरके आतापसे सतापको प्राप्त करता ससारी जीव क्षोभित मन हो निज स्वरूपकी झलक न पा परपदकी दीप्तिमें भ्रमण करता हुआ तिस विरुद्ध ज्योतिसे प्रदर्शित पदार्थ और उनके परिणमनोंको आतापको शातिकारक जान उनके निकट जाता है, परन्तु शातता न प्राप्तकर अधिक दाहज्वरको बढा अधिक २ आकुलित होता है । तीन लोक अलोकका ज्ञाता-दृष्टा, शुद्ध चैतन्यमय अविनाशी, निर्विकल्प, परमानद स्वरूप प्रभु अपने स्वरूपको भुला आज परपदमें आरूढ हो क्यों खेदित हो रहा है यही आश्चर्य है । सिंहशिशु अजोंके वृन्द-समूहमें भ्रमण करता क्यों अज सदृश आचरण कर रहा है यही खेद है । अपनी दृष्टिको परदृष्टि-रूप करके पररूप आपको अनुभवन करता अपनी खोटी मानिसे आप ही सिहवृत्तिको छोड क्षुद्र पशु-स्वभावमय हो रहा है । अपनी मानिको पल्टे, तौ आप सर्व पशुवृन्दका स्वामी सिंह ही है, सारे

सिंह पदकी गुप्त शक्ति अपने अनुभवमें आ जाए, क्षणमें ही स भय पदको उन्मूलकर निर्भय हो अपनी शक्तिकी अपनेमें मान्यता करनेसे निराकुल रहे, क्षुद्र सगतिमें न पडे। अपनी मानि सुखदाई और अपनी मानी ही दुखदाई है। मै ही सिद्ध निरजन परमात्मा हू- मुझसे अन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभादि भावकर्म, ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म—सर्व अन्य ही है। वे क्षणिक, मै अविनाशी हू। वे मूर्तिक, मैं अमूर्तीक हू। वे दुखस्वभाव, मै सुखस्वभाव हू। वे उपाधिरूप, मैं निरुपाधि हू। वे सकल्क, मैं नि कलक हू। वे पराधीन, मै स्वाधीन हू। उनका मेरा जरा भी मेल नहीं। जो उनकी सगति करे वह सदोपी हो। जो मेरी सगति करे वह निर्दोपी हो। मेरी सम्पत्ति अविनाशी, उनकी विभूति विनाशीक। मैं अपने निज-आत्मानुभनकी भावनासे परमतृप्त हू। मुझमें जन्म, जरा रोग, व्यापते नहीं, कर्म रिपु मेरा मुह देखते नहीं, मैंने अपनी अनुभूतिकी भूमि-में ही अपना अगम दुर्ग बनाया है, उसीमें निवास करता अपनी चिदनुभूति रानीके साथ सुखसे क्रीडा कर रहा हू। मुझे भोजन, वस्त्र,

है। मेरे दुर्गमें अन्य किसी मेरे विरुद्ध पक्षका प्रवेश नहीं। मैं अपनी अद्भुत शक्तिका आप स्वामी हू। मै सबको देखता हू, परन्तु मुझे कोई नहीं देखता। मै किसीके पास जाता नहीं, परन्तु सब मेरे निर्मल आत्मदर्पणमें (जो मेरे ही अनुपम शय्या महलमें लगा है) आपसे आप अपनी समय २ की परिणतियोंको लिये आ आ कर मुझे अपना रूप दिखा रहे हैं। मुझसे अन्य जन परस्पर एक दूसरेको रागसे ग्रहण करते हैं, परन्तु मै अपनी चिदनुभूतिरूप पटरानीके सिवाय किसीको ग्रहणकर पर-पद-रत नहीं होता। जिस सुखको पानेके लिए मुझसे अन्य जन तरसते हैं, उस आनन्दको पाकर मैं अनुभवानन्द रूप रहता हू।

अद्भुत चोरी।

(२)

आज मै, जो अनादि कालसे मोह, मदिराके तीन नशेमें बेहोश हो रहा था, किञ्चित् मदकी हीनतासे जो सचेत होता हू तौ अपने ज्ञानानद स्वरूप अरूप अविनाशी अखड त्रिलोकभूप चैतन्य प्रभुको अपनी दृष्टि सन्मुख न देख विह्वल होता हू और उस वीतराग स्वस्वभाव-गुप्त स्वामीसे राग प्रगट करनेको दौडता हू, जिस जगत् कृत्रिम रूपकी प्रत्यक्ष चमककी दमकमें जाता हू, वहा ही जलके भ्रममें बालूरेतको पा क्षोभित हो अधिक अधिक अपने श्रेष्ठ इष्ट ईश्वरसे मिलनेकी रुचिरूप-तृषासे बाधित होता हू। अपने परम स्नेहीकी खोजमें पलायमान होते होते मै एक शीतल सम्यक्त वृक्षकी छायामें आकर विश्राम लेता हू और बहु

भ्रमणकी थकनको मिटा क्षणिक विचार करता हू तो अपना स्नेह पात्र अपने अनुपम प्रेम रसमें भिंजोकर मुझे आनन्दित करता हुआ मेरी तृपाको बुझाता हुआ मेरे अनुभवमें मानो प्रत्यक्ष दीख रहा है—ऐसा प्रतीत होता है।जो जगत्के कृत्रिम अकृत्रिम रूप मुझे थोडी देर पहले भयानक, विरस, और दु खदाई मालूम होते थे, वे अभी मुझे निर्भयरूप, सुरस और सुखदाई विदित होते है। जैसे नमक विना रसोईके नाना प्रकारके व्यञ्जन अस्वादिष्ट, घृणास्पद और त्यागने योग्य जचते है और वही जब नमक सहित भोक्ताके अनुभवमें आते है, तो सारे सलोने, सुस्वादिष्ट, रुचिकर और उपादेय जाने जाते है।वैसेही इस समय सारे हेय पदार्थ निजानन्द रसके झलकते ही मुझे सुरस और उपादेय दिखाई देते है। मै अपनी इस चिरअप्राप्त दृष्टिको उपलब्धकर उन नटबाजोंकी ओर कि जिन्होंने सारे जग—वासियोंको अपनी मतिसे नचा नचाकर और आप उनके साथ नाचकर इस जगतको एक नाट्यशाला बना दिया है, जब देखता हू तो उनके भीतर भी मन—अगोचर, परम पदधारी, अविकारी, स्वच्छन्दविहारीको छिपा हुआ अनुभवित करता हू। वे राग—द्वेप—नटवाज आज मेरे सन्मुख आ अपना स्वाग निकालते हैं और अपनी सौम्य सुन्दर निरुपम मूर्ति मुझे दिखा मेरे मनको चुराकर वीतराग सर्व त्यागी होते हुए भी चोरकी सज्ञाको प्राप्त होते हैं। अब मैं भी इन चोरोंसे मिलता हू और जहा जहा स्वात्मधन जिस जिसके पास गुप्त पडा है उसको चुरानेके लिये अपनी गुप्त मूपणरूप

वस्त्रोंको फेंकता है और विना किसी ओर देखे नग्न हो स्वरस–सरोवरमें प्रवेश करता है। शात, मिष्ट, निर्मल स्वरस पूर्ण, स्वानुभवकी वैराग्य पवन द्वारा प्रेरी हुई, कल्लोलें जब उस पुरुषके तनको स्पर्शित करती है और अपनी शातता उसके प्रदेशोंके अन्दर प्रदान करती हैं तब उस पुरुषको जो भवातापकी शाततासे निराकुलता प्राप्त होती है उसको वही जानता है या ज्ञानानन्दी सिद्ध परमात्मा जानते है। अपने निर्मल विवेकके चुल्लुओंसे शुद्ध स्वरस–जल लेकर जब अपने स्वरूपाचल मुखके भीतर क्षेपण करता है तब वह पुरुष तृषाको शमनकर अनुपम जलकी अपूर्व मिष्टताका स्वाद लेले तृप्ति रहित होता है। पीते पीते अघाता नहीं, पीते पीते कभी पेट फुलाता नहीं, ऐसे जलका पानकर प्रफुल्लित बदन व्यक्ति अपनी शक्तिकी व्यक्तताकी झलक पाकर सचेत होता है और उस सरोवरमें ही निरन्तर अवगाह करनेका सकल्प करता है।

अपने तनको हुलसायमान देख और भव–वनमें भटकते हुए अपने पूर्व साथियोंसे अपनेको श्रेष्ठ मान ज्यों ही वह अपनेको परमात्मा, परब्रह्म, अविकारी, मोक्ष–ग्राम–विहारी, अतुल पराक्रमधारी अवलोकन करता है कि यकायक इस मानके अभिमानमें उन्मत्त हो सर्व जगत्को भुला, द्वैत्य भावको गला, अद्वैत हो, निजज्ञान–तनमें विराजित रह स्वरस–सरोवरके भीतर उन्मत्त चेष्टा करने लगता है। सारे सरोवरको अपना नृत्य–स्थान बना नाचता है। ऐसे नृत्यका करैया, नि.शक–सम्यक्त–गुण धरैया, स्वपदमें बसैया, जब जब नृत्य करते २ रुकता है, अपने तनको ... अधिक-

अधिक विशुद्ध देखता है। नृत्यके प्रपचमें रजित स्वपूर्ण शुद्धता-अभिलाषी अपने धारावाही प्रयत्नसे अपने उद्देशको पूर्ण करता हुआ जब अपनेको परम शुद्ध अवलोकन करता है तो अपने तनकी और उस सरोवरके जलकी आभामें कुछभी फेर नहीं देखता। जैसा ही क्षीर समान निर्मल जल, वैसा ही स्फटिक समान निर्मल तन। दोनोंकी शुद्धतामें तीनों लोक और अलोक एक ही समयमें समाजाते है। अन्य २ समयोंमें त्रिलोकालोक अपने स्वरूपको बदलता है तो वैसा ही इन दोनोंकी निर्मल भूमिमें प्रतिभाषित होता है। ससारी रागी जीव अपने आशागर्त्तमें जिन तीन लोकको रखना चाहता है और वे उसके गर्त्तमें आते नहीं, वे ही तीन लोक अपने बधु अलोक सहित आज इस व्यक्तिके निर्मल तन–दर्पणमें प्रफुल्लित हो आ बसे है–यही एक बडा आश्चर्य है। यद्यपि यह तीन लोकका स्वामी हुआ है, तथापि यह इन तीनों लोकोंकी एक अणुमात्र वस्तुको भी नहीं छूता है, न उनको ग्रहण करता है और न छोडता है। यह कुछ इसीमें अपूर्वता है कि थाली सामने रक्खी है, पर खाना नहीं। अहा! यह इन तुच्छ जगत्के ज्ञेयाकार पदार्थोंका क्या स्वाद लेवे? जो पदार्थ क्षण २ में स्वरूपसे विरूप हो जाते है। यह तो अपने आत्मीक रसका स्वाद लेता हुआ, उसीको निरतर अनुभव करता हुआ, उसीको अपना सर्वस्व मानता हुआ, उसी रसके पुज अथाह स्वभावरूप सरोवरमें उन्मज्जन होता हुआ क्षणिक, पराधीन, विरस फलरूप आनन्दोंसे विलक्षण नित्य अनुभवानन्दको पाता हुआ विश्राम करता है।

मेरी महिमा ।

(५)

आज मै कर्त्तापनेके कटुक, विरुद्ध और नि सार भव–विकारको त्यागकर निज ज्ञाता–दृष्टा स्वभावमें कल्लोल करनेके लिये उद्यत हो गया हू । मेरा बनाया भव–विकार मुझे ही विष–आहार सा हो चुका है । जिस विकारने मुझे पराधीन बधनमें डाला और मेरी स्वत न्त्रताका आघात किया उस शत्रुवत् प्रपचधारी व्यवहारीसे मुझे क्या प्रयोजन ? मै चैतन्य–रसका चैतन्यमई घट हू । मेरा उपादान और निमित्त कारण एक ही है । मुझे त्रिलोकमें मरे किसी परमाणुके अवखरे* मात्रसे मतलब नहीं । मै कभी किसीको बनाता नहीं । मैं कभी किसीको विगाडता नहीं । मै अपने स्वस्वभा, वमें अविचलित रह सदा निज रसका ही पान करता हू । मुझे क्रोध, मान, माया, लोभ और उनके पिता राग, द्वेप तथा महापिता मोहसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं । मै शातरूप हू, वे उद्वेगरूप हे । मैं ज्ञानरूप हूं, वे अज्ञानरूप है । मै निष्क्रियरूप हू, वे क्रियावान व्यवहाररूप है । मै गुणनिधान हू, वे गुण विरुद्ध औगुण निवास है । मै निर-पराधी हू, वे अपराधवान हैं । मै निर्बंध हू, वे बधसहित हैं । मैं एकाकी एक रूप हू, वे अनेकानेकरूप है । मेरा उनका त्रिका-लमें सम्बन्ध नहीं, मेल नहीं, स्पर्श नहीं, न मै उनका कर्त्ता, न वे मेरे कर्म । मेरे निर्मल ज्ञान दफ्तरमें कर्त्ता कर्मका शब्द ही नहीं । मैं

* अविभाग परिच्छेदरूपगुण

शुद्ध आहार—भोजी, अपनी शुद्ध परणतिका निरतर खोजी हू। मुझे मेरे ज्ञान—साम्राज्यका प्रबन्ध है, जिस प्रबन्धमें अनुरक्त मै जगतके प्रपचरूप प्रबधसे असम्बन्ध हू। मेरा ज्ञान—साम्राज्य मेरी ही निरन्तर सावधानी और परम पुरुषार्थके बलसे अटल है। यद्यपि मैं त्रिलोकालोकमें व्यापक हू, परन्तु सदा ही निज थलको न तजकर अव्यापकरूप हू। यद्यपि मै इन्द्रिय—ग्रामोंकी रचनासे शून्य हू, तथापि अपने अतीन्द्रिय गुण ग्रामका धाम होकर अशून्य रूप हू, यद्यपि मैं निज परिणाम—कर्मके करनेसे कर्त्ता हूं, तथापि परकर्तृत्त्वके अभावसे सदा अकर्ता हू। यद्यपि मै निज परिणति रमनके स्वादका भोक्ता हू, तथापि परपदार्थका स्वाद न लेकर सदा अभोक्ता हू। यद्यपि मै परवस्तुओंकी प्रवृत्तिकी इच्छासे रहित सदा कृतकृत्य हू, तथापि निजात्मीक स्वस्वमयरूप प्रवृत्तिमें प्रवर्तन करता हुआ सदा अकृतकृत्य हू। यद्यपि मै अपने आत्मीक द्रव्यका धारी अपने द्रव्यको सदा ज्योंकी त्यों रखकर नित्यरूप हूं, तथापि केवलीगम्य षट्गुणी हानि—वृद्धिरूप समुद्र—कल्लोलवत् अगुरुलघुगुण परिणमनके कारण नित्य पर्य्याय द्वारा व्ययोत्पादको सहन करता हुआ अथवा नित्य अपनी अवस्थाको बदलनेवाले ज्ञेय पदार्थोंके मेरे निर्मल ज्ञान—दर्पणमें समय २ परिवर्तन होते हुए ज्ञेयाकारोंकी अनित्य स्थितिके झलकनेके कारण उस झलकनको धारण करता हुआ अनित्यरूप हू। यद्यपि मैं केवलज्ञान—नेत्रका धारी होकर अपने जाति स्वभावधारी केवलज्ञानियोंसे प्रत्यक्ष और सम्यग्ज्ञानियोंसे परोक्षरूपसे दर्शने योग्य हू, तथापि निजानुभवरहित छद्मस्थ अज्ञानियों द्वारा सदा ही अदृश्यरूप

हू। मेरी शक्ति निराली है। मेरे ही अनुभवने मेरी शक्तिकी व्यक्तता निकाली है, परमपदधारी परमेष्ठी, पचनाम व्यवहारी, अविकारी, साम्य प्रचारी, सुखकारी, मेरे ही अनुभवकी अपूर्व महिमा है। मुझे जो कोई विभाव भावोंका और परद्रव्योंका कर्त्ता कहे वह स्वयं अज्ञानी और अनुभव-रसरहित, बिरसका स्वादी, मोह व्याधिसे पीडित परमानी है। जिन्होंने आत्मबाग लगाया है और उसमें सुगुणरूपी सुगंधित पुष्पोंको उगाया है वे आत्म-मोही मुझे कभी भी परका कर्ता कहनेके नहीं। मैं आज अपने स्वतंत्र बलके अभिमानमें उन्मत्त हो अपने आत्म-बनके भीतर क्रीडा करता हुआ स्वात्मगुण पुष्पोंकी सुगंधको लेता हुआ और निज परिणतिरूपी अर्द्धाङ्गिनीके साथ सैर करता हुआ परआनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेता हू।

युद्धमें गृहस्थ-सुख।

(६)

जिस शत्रुने अपने तीव्र पराक्रमसे तीन लोकके संसारियोंको जीतकर अपना विजयका डका बजाया है और जो अपने त्रिलोक-विजई अभिमानकी मदिरा पीकर उन्मत्त हो युद्ध-स्थलमें आकर खडा हो अपना पेट फुला रहा है- ऐसे शत्रुको जीतनेके लिये आज मै अपराजित भेदज्ञानका धनुप हाथमें लेकर खडा हो गया हू। मेरे धनुपकी टकारके सामने किसीकी भी ताकत नहीं है कि जो टिक सके। मेरे भेदज्ञान धनुष्यसे निकला हुआ वीतराग भावका बाण

ज्यों ही उस शत्रुकी तरफ जाता है वह मेरे सामनेसे दूर हो जाता है। पर मेरा थमना कि फिर वह प्रबल रिपु मेरे सामने आ मुझे अपनी कठोर दृष्टिसे घूरने लगता है, परन्तु मुझे इसका कुछ भय नहीं। मैं तो जानता हू कि मैं अजर, अमर, अखड और स्वाधीन हू। मेरे साथी भाई बन्धु अनन्तानन्त मेरे ही सारखे अनत-बली विद्यमान हैं। मुझे एक यह क्या, इसके ऐसे अनतानत शत्रु आ जाय तो मेरा क्या कर सक्ते हैं? इसका जोर तो उन्हींपर चलता है जो अज्ञान मंदिरमें बैठे २ अपनी इन्द्रियोंकी चाकरी किया करते हैं और मन–मोहन नटबाजके चलाए चलते, बैठाए बैठते, दौड़ाए दौड़ते, रुलाए रोते, हसाए हसते, खिलाए खाते, सुलाए सोते, और बहकाए बहकते हैं। तीन जगत्में चारों गतिके प्राणियोंका प्राय यही हाल है। प्राय सर्व ही अपने बलको भूल-कर बेखबर हो रहे हैं, इसी लिये यह शत्रु सर्वको जीतकर मानके पर्वतपर चढा हुआ है, परन्तु मैं जिस मानके पर्वतपर आरूढ हू, वह इस शत्रुके तुच्छ पहाडसे कहीं ऊचा है। यह शत्रु मोहाध हो यह नहीं देखता है कि मैं नीची जगहपर हू, विना विचारे मेरा मुकाबला किये ही जा रहा है। मैंने भी स्वआचरणरूपी बाणोंके समूहको सम्हाला है और अब मैं इसके ऊपर ऐसी बौछाड करता हू कि जैसे घनघोर मेघवृष्टिकी बौछाड होती है। अवश्य यह मेरी बौछाड़से डरकर भागेगा और फिसलकर पर्वतके नीचे हो रहेगा। इतना विचारकर अतर्मुहूर्ततक वीतराग बाणोंकी बौछाड जो मैंने छोडी वह विचारा इधर उधर रास्ता ढूढ मेरी नजरसे बाहिर चला

गया, परन्तु ज्यों ही मै जरा दम लेता हू कि वह निर्लज्ज फि सामने ताकता है। सच है, मैं पचम गुणस्थानके रेजिमेंटका सिपाह हू। मेरे बाणोंमें उतना बल नहीं जितना श्रेणी–आरूढ़ लेफ्टिनेन्टोंके बाणोंमें होता है, परन्तु मै अब आलस्य करनेका नहीं, मैं तो इसको बारबार बाण मारे ही जाऊगा। मेरा यह अभ्यास ही उन्नति करेगा और मै कुछ कालके भीतर अवश्य श्रेणी आरूढ हो तीव्र बाण चला इस शत्रुको मार मारकर निर्बल कर दूगा और बारहवें दर्जेपर पहुचते ही इसको ऐसी अधमरी हालतमें कर दूगा कि यह निर्बल आखोंसे मेरी ओर देखता रहे, परन्तु अपना सारा अभिमान और अपना सारा बल भूल जाए। मैं जहा चौदहवें दर्जेमें पहुचा और अपने अनतगुणरूप सेनाका स्वतत्र कमान्डर–इन–चीफ (सेनापति) हुआ कि इधर इस शत्रुका भी प्राणान्त हुआ। मै जानता हू कि यह वैक्रियक* रूप धारी है, नाना रूप होकर नाना जीवोंको सताता है। इसकी जो अनादि अनत शक्ति है उसको यह प्रयोग तो करेहीगा। करे, जिनके दुर्भाग्य हैं उन्हींपर इसका आक्रमण होगा। मै तो समझ गया हू। मैं तो इसकी नस नससे जानकार होगया हू। मेरा इसका मुकाबला तो थोडे ही दिनके लिये है। मुझे निश्चय है कि मै इसे एक दिन मारकर गिरा दूगा और तब यह अनत कालमें भी मेरा मुकाबला करनेको खडा नहीं हो सक्ता।

मुझे अब भी आनन्द है, मेरा कुछ भी बिगाड यह आश्रव नामधारी शत्रु नहीं कर सक्ता। यद्यपि मै इस शत्रुसे युद्ध कर रहा

* कर्माण वर्गणाके आश्रवसे प्रयोजन है।

हूं, तथापि अपनी अपूर्व शक्तिके प्रादुर्भावसे अपने अनुभवके व्यापार-को करता हुआ स्वात्म–ज्ञान–धनको अत्यन्त न्यायपूर्वक उपार्जन करता हू । मेरी वीतरागता माता और सम्यग्ज्ञान पिता है । मेरी स्त्री मेरी अनुभूति है । मेरा पुत्र विवेक है । मेरी पुत्री दया है । मैं अपने धनसे नानाप्रकारके आत्म–रस–गर्भित व्यञ्जनोंको अपनी स्त्री द्वारा तय्यार करा अपने सर्व कुटुम्बको तृप्ति करता हुआ आप भी उन्हें भक्षणकर संतोषित होता हू और अपने परिवारकी एकता और सुमतिका आनन्द लेकर परम आल्हादित होता हू । मेरा कुटुम्ब लौकिक रीतिको पालता हुआ भी पारलौकिक परब्रह्म स्वरूप स्वधर्म सेवासे विमुख नहीं है । जिस कुटुम्बमें धर्म और कर्म दोनों होते है वही कुटुम्ब कुटुम्ब है अन्यथा पाप–मंदिर और नर्क–निवास है ।

गृहस्थीके अद्भुत सुखको भोगता हुआ तथा परमात्मस्वरूप महा मुनियोंको शुद्ध परमामृत नैवेद्यका आहार–दान देता हुआ मैं अपने जन्मको कृतार्थ मान रहा हू । मै मोक्ष अवस्थाका साक्षात् साधक हू। मुझे इन्द्रियाधीन पराधीनता नहीं है । मैं तो प्रत्येक प्राणधारीमें रहने योग्य स्वातन्त्र्यताका पक्षपाती हू। मुझे मेरी स्वातन्त्र्यता (Independence) ही निराकुल, अपूर्व और निर्विघ्न अनुभवानन्दका अनुपम सुख प्रदान करती है ।

विवाह-रस ।

(७)

परमामृतके प्रवाहसे परिपूर्ण, स्फटिक समान निर्मल, [illegible] चिज्ज्योति विलासी अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रवासी, [illegible] रहित, विभावमेघाडम्बरविरहित, [illegible] विकार ज्ञान-चन्द्रमा आज मेरे स्वच्छ हृदयरूप आकाशमें उदयको प्राप्त है। मेरे अद्भुत चन्द्रकी चांदनीके सामने जिधर देखता हूं पीतत्वही विदित होता है। कहा गए वे राग और द्वेष, जिनके शमें पड़ा हुआ मैं किसीको शुभ और किसीको अशुभ देखता धन्य है आजका समय ! जिन दुष्टोंने मुझे कभी पापी और पुण्यात्मा कहलाया और मुझे अनादि कालसे अत्यन्त दुख उन्हींकी [illegible] मैं नहीं देख पाता हूं। जो मैं बदल

आच्छादित और विकारी नहीं कर सक्ता। जो ऐसे चद्रमासे विमुख होकर परपुद्गलोंको, धन, धान्य, स्त्री, कुटुम्बादिकोंको अपना बनाते हैं और उनकी संगतिमें अपना महत्व मानते हैं वे इन्द्रियाधीन प्राणी कर्म-पाशसे बंधे हुए, बधमार्गमें ससरण करते हुए, ससारी, व्यवहारी, आत्मज्ञानविसारी रहकर, परमपदके पथसे विपरीत चलकर, आकुलताका असह्य दु ख प्राप्त करते है। मैं अपने चद्रमाको देखता हुआ आज निराकुलित रहकर परम सुख प्राप्त कर रहा हू। अनादि कालसे अनुभव-रसके पाए विना मैं अपनी तृषा शान्त नहीं कर सका था सो आज इस चद्रबिम्बसे झडते हुए अमृतको पीकर परम तृप्त हो रहा हू। इस अनुभव-रसकी मिष्टतामें पुष्टता भी विद्यमान है। मेरा तन जो सासारिक सकल्प विकल्पोंके गमनागमनसे दुर्बल हो रहा था आज इस अनुभव-रसको पीकर पुष्ट और बलवान् हो रहा है। मेरे तनकी आभा जो विभाव गुणोंकी सगतिके कारण क्षीण हो गई थी, सो आज इस अमल रसके पान करनेसे समय २ वृद्धिको प्राप्त हो रही है। मेरे चक्षुओंमें मेरे तनकी क्षीणताके कारण देखनेकी शक्ति मन्द और विटरूप पड गई थी सो आज तनकी पुष्टताने मेरे चक्षुओंको तीव्र और अविकारी बनाकर मेरे साथ बडा भारी उपकार किया है। मै इन चक्षुओंसे जिधर देखता हू उधर ही वीतरागताका प्रसार पाता हू। यद्यपि जगत्‌में अनन्ते ज्ञेय पदार्थ हैं, तथापि मेरी दृष्टिमें कोई भी समाते नहीं। मुझे सब एक अचेतनका पिंड विदित होता है। मेरी दृष्टिकी समानता और अविकारता उन पदार्थोंसे अविमोहित रह अपने चैतन्यके अभिमानको कदापि त्या-

विवाह-रस ।

(७)

परमामृतके प्रवाहसे परिपूर्ण, स्फटिक समान निर्मल, स्वच्छन्द, चिज्ज्योति विलासी अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रवासी, कर्मराहुग्रसन रहित, विभावमेघाडम्बरविरहित, स्वभावपरिणमनविकाशसहित ज्ञान-चद्रमा आज मेरे स्वच्छ हृदयरूप आकाशमें उदयको प्राप्त हुआ है। मेरे अद्भुत चद्रकी चादनीके सामने जिधर देखता हू पीतत्व पीतत्वही विदित होता है। कहा गए वे राग और द्वेष, जिनके वशमें पडा हुआ मैं किसीको शुभ और किसीको अशुभ देखता था। धन्य है आजका समय ! जिन दुष्टोंने मुझे कभी पापी और कभी पुण्यात्मा कहलाया और मुझे अनादि कालसे अत्यन्त दुःख दिये उन्हींकी सूरत आज मैं नहीं देख पाता हू। जो मै बहुत ध्यानसे देखता हू तो मै अपने चद्रमासे भिन्न अचेतन अवस्थामें पडे हुए और स्पर्श, रस, गध, वर्णको लिये हुए एक पुद्गलके समूह मात्रको देखता हू, जिस समूहका स्थूलसे स्थूल सुमेरु पर्वत सदृश टुकडा अथवा सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमाणु समान अश मेरे चद्रमाके स्वभावसे सर्वथा भिन्न है। जिस पुद्गल समूहके किसी अदृश्य विभागको मैं अपनेही अज्ञानसे पुण्य और पापके नामसे पुकारता था, वही विभाग आज मेरे ज्ञान-चद्रमाके निर्मल प्रकाशमें एक नामसे और एक रूपसे प्रतिभासित होता है। मेरे चद्रमाका विमान उज्ज्वल, निर्बाध, और चिन्मूर्तिमयी है। उसको कोई भी पुद्गल-समूहका विभाग मलीन

और उसके सर्व सद्गुण सम्बन्धी मुझे अपनी कन्याके प्रदान करनेकी इच्छा प्रकाशित करते हैं । मैं परम शातता और परम कोमलतासे इस अपूर्व लाभको ग्रहण करनेकी स्वीकारता देता हू । वे फिर कहते हैं तुम मेरी कन्याको स्वधर्मसे प्रतिपालन करना । मैं इसके उत्तरमें स्वधर्मसे पालना स्वीकार करता हू । सर्व सभागण आनन्दमें प्रफुल्लित हो शिव देवीके साथ मेरा लग्न होना योग्य समझकर श्री सिद्धात्मस्वरूपकी भाव पूजाका समारभ और आरभ कराते हैं । ऐसी पूजामें ध्यानाग्नि जलती है । कर्म ईंधनोंकी आहुति देकर होम होता है । अन्तमें उस निर्मल वेदिकाके मध्य विराजित परम सिद्धस्वरूपके चहुओर सप्त अतिम गुणस्थानरूप प्रदक्षिणाओंको करके वह शिव देवी आज मेरी पटरानी होती है । मैं उसको पाकर अत्यन्त मग्न हो गया हू, मेरा स्वभाव उससे तन्मय हो गया है । मै अपनी प्रिया शिवसुन्दरीके भोगका अनुपम विलास लेता हुआ सर्व क्षणिक आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दके परम विशाल सुस्वादको ग्रहण करता हू ।

दशलाक्षणिक धर्म ।

(८)

दर्शन विशुद्धिधारी, अविकारी, निर्विघदशा—विस्तारी, परमपूज्य, परमेश्वर, आत्माराम विहारी, चैतन्य भूपति आज निज गण समूहरूप परिवारको साथ ले शुद्ध भावरूप जिन

गती नहीं। ऐसी निर्मल दृष्टि और निर्मल तनका धारी होकर अब मैं शिव–कन्याके वरनेको उद्यमी हुआ हू। मै अपने विवेकदूतको भेजकर शिव–कन्याके साथ सगाई कर चुका हूं। भेदज्ञान–अश्वपर आरूढ हो, उत्तम क्षमादि दश धर्मरूप वरातियोंको सग ले, सोहं सोहं बाजित्रोंकी ध्वनिको प्रकट करता हुआ, स्याद्वाद जिनवाणीकी विजयरूप पताकाओंको लहराता हुआ, निर्मल भावरूप श्वेत रेशमी वस्त्रोंको पहने हुए, मोह–विजयरूप मौडको बाधे हुए, मंगल गान गानेवाले अध्यात्मिक ग्रन्थरूप भजन–मडलीके साथ अनुपम वैराग्य–रसकी मनोहर छटाको विस्तारता हुआ मैं श्री शिवमतीके गृहद्वारपर आ गया हूं। श्री शिवदेवीकी जननी वीतराग–विज्ञानता अपने घरके द्वारपर आकर मेरे ऊपर मगलीक परिणामरूपी अक्षतोंको क्षेपण करती है और निर्मल ज्योतिको जगाकर मेरी आरती उतारती हुई योग्य स्वागत करती है। समुचित समयपर मै भेदज्ञान–अश्वसे उतरकर आत्मज्ञानरूप शिवमतीके मोहमें भरा हुआ उसके निर्मल शुद्ध स्वभावरूप आगनमें आता हू और शातताकी स्वरूपवती वेदिकाकी छायाके नीचे सुखासन पूर्वक विराजता हू। मेरी भावी पटरानी मेरे दक्षिण भागमें आकर सुशोभित होती है। उसकी निर्मल दृष्टि मेरी भी निर्मल दृष्टिसे सर्व लज्जाको छोड ज्यों ही यकायक आकर भिड जाती है त्यों ही एक अतीन्द्रिय आनन्द–रसकी धारा हृदयमें बहने लग जाती है। शिवदेवी तत्काल मेरे कठमें स्वानुभवकी सुन्दर पुष्प–माला क्षेपण करती है। शिवदेवीका पिता वीतराग–विज्ञानताका स्वामी चैतन्यप्रभु

और उसके सर्व सद्गुण सम्बन्धी मुझे अपनी कन्याके प्रदान करनेकी इच्छा प्रकाशित करते हैं । मै परम शातता और परम कोमलतासे इस अपूर्व लाभको ग्रहण करनेकी स्वीकारता देता हू । वे फिर कहते हैं तुम मेरी कन्याको स्वधर्मसे प्रतिपालन करना । मैं इसके उत्तरमें स्वधर्मसे पालना स्वीकार करता हू । सर्व सभागण आनन्दमें प्रफुल्लित हो शिव देवीके साथ मेरा लग्न होना योग्य समझकर श्री सिद्धात्मस्वरूपकी भाव पूजाका समारम और आरम कराते हैं । ऐसी पूजामें ध्यानाग्नि जलती है । कर्म ईधनोंकी आहुति देकर होम होता है । अन्तमें उस निर्मल वेदिकाके मध्य विराजित परम सिद्धस्वरूपके चहुंओर सप्त अतिम गुणस्थानरूप प्रदक्षिणाओंको करके वह शिव देवी आज मेरी पटरानी होती है । मै उसको पाकर अत्यन्त मग्न हो गया हू, मेरा स्वभाव उससे तन्मय हो गया है । मै अपनी प्रिया शिवसुन्दरीके भोगका अनुपम विलास लेता हुआ सर्व क्षणिक आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दके परम विशाल सुस्वादको ग्रहण करता हू ।

दशलाक्षणिक धर्म ।

(८)

दर्शन विशुद्धिधारी, अविकारी, निर्मेघदशा–विस्तारी, परमपूज्य, परमेश्वर, आत्माराम विहारी, चैतन्य भूपति आज निज अनन्त गुण समूहरूप परिवारको साथ ले शुद्ध भावरूप जिन मदिरमें प्रवेश

कर, श्रीपरमात्म देवका दर्शन प्राप्तकर आल्हादित हो गया
जिसके तेजके सन्मुख अनत कोटि सूर्य्य भी तिमिराच्छन्न भासते
जिसकी शात ज्योतिके सामने अनत कोटि चन्द्र भी नक्षत्रवत्
क्रान्ति प्रतिमापित होते है, जिसकी निर्मलता और शुद्धताईके
स्फटिकमणि, मलरहित जल और सर्वार्थसिद्ध विमानवासी
शुक्ल लेश्यायुक्त परिणाम भी सम्मिलित मालूम होते हैं। ऐसे
मनोज्ञ, परमोत्कृष्ट प्रभुके दर्शन प्राप्तकर आज यह सतृप्त हो
है। दिगम्बर जैन मुद्रा उत्तमक्षमादि दशलक्षण-धर्मरूप
सुशोभित, रत्नत्रय जडित एकाकार ज्ञानरूप मुकुटसे विराजित,
रमणीरमणके रागरूप रक्त मुख-रन्ध्रसे उल्लसित, ज्ञान दर्शन
चक्षुओंसे दीप्तिमान् शुद्ध श्वेताम्बर मुद्रारूप ही प्रकाशित हो
है। जिस मुद्राका मोही यह चैतन्य भूपति अभेद चिन्तामें पड समु
कल्लोलवत् आचरण कर रहा है। इसका दृश्य दर्शकको अद्भु
आनन्द प्रदान कर रहा है। इसके स्वरूपके हतनेको अनत क
वर्गणाए इसके निकट आती है, परन्तु यह क्रोधको न प्राप्त हो अप
आत्मरूप उत्तम क्षमा गुणमें तल्लीन है। अनत अनुपम गुणों
स्वामी होकर भी मान-कषायरहित, परममार्दव अधिकारी, जो के
भावे, तिसे ही सुखकारी हो रहा है। अपनी सरलतामें तन्मय हं
कपटरहित, परवस्तु ग्रहणसे विरागी आर्जवगुणधारी, समता-विहा
हो रहा है। सत्यस्वभावधारी, असत्यता-निवारी, परम यथार्थ सम
क्तगुण-विराजित, नित्यसत्यता-प्रचारी, सत्य-अधिकारी हो रहा है
द्रव्य-भाव-मल-त्यागी, आत्मशुचितासों पागी, वीतरागी, निर्मल चेतन

रेत् स्नानकर्ता, परम शौच्य गुणसम्पन्न हो रहा है । अपनी क्रियोंको परधर्मसे सकोच, परमार्गको मोच, निजधर्मको एकाकार तन्मयतामें धार उत्कृष्ट **संजमधर्म** प्रतिपालक हो रहा है । शुद्धोपयोग—अग्नि निज चहुओर जला, निजआत्मको तपा, परतापरहित, स्वगुण अविरहित, **परमतप** धर्ममें तन्मय हो रहा है । भव-विकारत्यागी, परमाणुसे विरागी, निजधन अनुरागी, आत्म विश्रामकारी, परम त्याग धर्ममें सावधान हो रहा है । षट्द्रव्य—लोक—ज्ञाता, निजद्रव्यमें ठहराता, निजनिज अपनाता, परम आकिञ्चिन्यपदधारी हो रहा है । परम ब्रह्मपद—भोगी, शिवनारिसे सयोगी, परयान-चरण-त्यागी निज ब्रह्म आचरणकारी, ब्रह्मचर्य्य धर्मानुयायी हो रहा है । ऐसे दशधर्मको सवारे चैतन्य भूपति धर्ममूर्त्ति ही प्रमाणित हो रहा है ।

दर्शक इस धर्ममूर्तिको देख अधर्मको भुला निजधर्ममें अनुरागी होकर चैतन्य भूपतिकी सेवा करनेको उद्यत हो गया है । जोकि थोड़ी देर पहिले विषय वासनाके क्षणमय सुखमें आनन्द मानता था और इच्छित विषयोंकी लालमामें ससार—भ्रमण करनेमें उत्साही था वही इस समय अनादि भूलको मिटा, निज स्वरूप—साध्यके निज आत्मज्ञान साधकको प्राप्तकर, स्वाधीन आनन्द—स्वादका रसिक हो अपनी पूर्ण रुचिके बलसे उपाधिजन्य आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका सम्यक् स्वाद ले रहा है ।

आगारी साधु ।

(९)

सप्तभयरहित, स्वकुलमानावलम्बी, स्वमर्य्याद–प्रवाही, ,
नुरागी, सुधासमूह, आत्मसाधु आत्मव्यक्तताके साक्षात् साधनमें उ
न्मत्त हुआ, त्रिलोकको विस्मरण किये हुए मनोहर
भीतर रमन कर रहा है । मैं ज्ञाता, दृष्टा सत्यस्वरूप हू, मैं क
भोक्ता नहीं हु, स्वरूपानन्दी मेरा इष्ट है । आत्मसाधुकी यही
चल श्रद्धा, यही गाढ रुचि, यही सच्चा लोभ इस साधुका ..
मित्र सम्यग्दर्शन है । स्वरूपकी शुद्धता स्वस्वरूप परिणमनसे
प्राप्त होती है, त्रिलोक प्रभु अविनाशी सिद्धात्मा मेरा ही वास्तविक रू
प है । षट् द्रव्यमय लोकमें जीव द्रव्य उपादेय और अन्य ज्ञेय औ
हेय हैं। यही संशय, विमोह, विभ्रम रहित सच्चा ज्ञान मेरा प्रिय स
होदर सम्यग्ज्ञान है । इंद्रिय और अनिन्द्रय विषय वासनाओंसे दू
रवर्ती काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, राग, द्वेष आदि विभावों
विलक्षण, एकाकार, सामान्य स्वसंवेदन ज्ञानमें तल्लीन, तथा परम प
वित्र आत्म विशुद्धतामें मगन, स्वसमयावरोही ब्रह्म आचरण मेरा
सद्गुरु सम्यक् चारित्र है । इस रत्नत्रय स्वरूप परम धर्मका सगी
आत्मसाधु प्रफुल्लित बदन आत्मप्रभावनाके हेतु सर्व आत्माओंकी स
माजमें उपस्थित हो क्रोधराक्षसकी विपक्षिणी उत्तम क्षमारूप परम
सुन्दर देवीकी उपासनाकर समाजको एक गुणस्थानमें विराजमान
कराय सर्वके साथ स्वसुधारस निर्मित अद्भुत पकान्न और मिष्टान्नका

क्षणकर परम वात्सल्य और प्रभावनागका वर्धक हो रहा है। इस प्रकारकी व्यावहारिक गार्हस्थ्य क्रिया इस दिगम्बर साधुको कैसे शोभती है यही एक आश्चर्य है। परन्तु जहा रत्नत्रय-ज्योतिका अनुपम प्रकाश है वहा कुछ आश्चर्य नहीं। वहा तो हर समय पराधीनतारहित स्वाधीन चिद्विलासका प्रसार है। मैं ऐसे आगारी और अनागारी साधुके दर्शनकर परम तृप्त हो गया हूं और एक वातकी वातमें उल्टे मार्गको छोड सीधे पथमें आ अनादि विस्मृत सर्वथा उपादेय अनुभवानन्दका स्वाद लेते हुए परम सतोषको प्राप्त हो गया हू। आज मेरा दिन सच्ची क्षमावनीसे परिपूर्ण है। जैसे मेरे अतरगमें परमोत्कृष्ट क्षमा है ऐसे सर्व जीवोंको उपलब्ध हो मेरी यह सच्ची दया भी मुझे अनुभवानन्द दिये विना रहती नहीं। धन्य है स्वस्वरूपका अनुभव! जो इसके मोही वे ही सच्चे मोही, और आनन्दरूप हैं!!

वन-विहार।

(१०)

उत्तम सयमधारी, निर्जन स्थान-विहारी, स्वपरोपकार-कारी, परम सज्जन अतरात्मा आज परमात्मबागकी सैर करता हुआ जो विचारता है तो अपनेको सर्वसे शून्य देखता है। विभावभावोंकी तरग आती नहीं, आत्मरहित द्रव्योंकी परिणति समाती नहीं, तथा द्वैतभावकी रचमात्र भी झलक दिखाती नहीं। ऐसी एकान्तताका अनुरागी अपनी सैरमें अद्भुत गुणोंका विकाश देख रहा है। कहीं अनंत ज्ञान है तो कहीं अनत दर्शन है, कहीं अनत वीर्य है तो

योग्य चक्रमें सज्जित करता है। सोऽहंके युद्धबाजित्र बजते हैं और सेना एकाएक मोहके बाह्य मनोहर, अभ्यतर महाभयानक औगुणोंसे भरपूर **विषयपुर** रूप **लंका नगर**के बाहर आ उपस्थित होती है। सोऽहकी स्याद्वादमय गर्जनाको श्रवणकर मोह एकाएक काप उठता है और तब साहस बाध युद्धकी तय्यारी करता है। मोह-रावणका भाई **शुभोपयोग** रूप **विभीषण** अपने भाईको समझाता है कि, अनुभूति आत्मारामको दे दी जाय। परन्तु मोहके मोहान्ध आग्रहको देख शुभोपयोग ऐसे कुसगको तजना योग्य समझ शीघ्र आत्मारामके चरणोंमें लोटता है और आत्मारामकी प्रियतमाको आत्मारामको दिलानेवाले न्यायरूप कार्य्यमें परिणमन करनेकी चेष्टा कर आत्मारामको पूरी २ सहायता करता है। मोह रावण अपने भ्राता **अशुभोपयोग**रूप **कुंभकरण** और **राग-द्वेष** रूप **इंद्रजीत** और **मेघनाद** पुत्रोंसे सलाहकर **चार कषाय**रूप प्रचड **सेनापतियों**को आज्ञा देता है कि, सर्व औगुणोंकी सेना तैयार की जाय। **मिथ्याज्ञान**रूप सेनाधिपति सर्वको चक्रमें सज्जितकर युद्ध-क्षेत्रमें आजाता है।

मोह-रावण और **आत्मा-राम**का युद्ध होता है। कभी औगुणोंकी, कभी गुणोंकी हार होती है। दोनों तरफके योद्धा एकाग्रचित्त हो युद्ध करते हैं। सत्यपथानुयायी आत्मा-रामका साहस बढता जाता है। अन्याय-मार्गी मोह-रावण अपनी सेनाको दबी देख साहसहीन होता जाता है। आत्मारामका सहोदर **सयमरूप लक्ष्मण** भाई अपने

भूति–सीताका पता लगानेका उद्यम करता है और शीघ्र ही श्रुति नाम विद्याधरसे खबर पाता है कि, **मोह–रावण** अनुभूतिको चुरा ले गया है। पश्चात् धर्मोपदेश परम वीर, निर्भय, अद्भुत विद्याधारी संतोंके लिये परमकामदेव श्री **सम्यक्त–हनूमान्‌से** भेंट कराता है। सम्यक्त योद्धा आत्मारामसे इस प्रकार मिलता है जैसे दूधमें दूध मिलता है। दोनोंमें एकाग्र प्रीति होती है। अपने मित्रकी वियोगिनी अनुभूति रानीसे मिलनेका प्रणकर **सम्यक्त** तय्यार होता है। और अपनी अपूर्व विद्याके बलसे शीघ्रही देख लेता है कि, उस अनुभूतिरानीको मोह–रावण कलंकित करना चाहता है। परन्तु परमसती, आत्माराममें आशक्त अनुभूति मोहके बिछाए हुए माया जालोंमें नहीं फसकर आत्मारामके नाम और गुणोंको स्मरण करती हुई अपने शीलकी रक्षा कर रही है। शीघ्र ही सम्यक्त–हनुमान् अनुभूतिसे मिलते हैं और आत्मारामकी खबर सुनाते हैं और विश्वासार्थ आत्मारामकी विवेक–मुद्रिका प्रदान करते है। इस सुखसम्वादरूपी अमृतको पाकर अनुभूतिके अंगका प्रदेश हर्षांकुरसे अकुरित हो जाता है। अनुभूति अपने **भेदविज्ञान–चूड़ामणि** देकर शीघ्र सम्यक्तको आत्मारामके पास भेजती है। आत्माराम अपने सम्यक्त–मित्र द्वारा अपनी प्रिया अनुभूतिकी खबर पाकर परमानंदित होते हैं और परम साहस कर अपनी अनुभूतिको ग्रहण करनेके लिये तय्यार हो जाते हैं। धर्मोपदेश और सम्यक्त दशलक्षणरूप सेनापतियोंको आज्ञा देते हैं कि, वे अपनी २ चमत्कारिक गुण रूप सेनाको कार्य्य–क्षेत्रमें परिणत होनेकी आज्ञा। सर्व सेना एकत्र होती है। **सम्यग्ज्ञान** मुख्य सेनापति सर्वको

वस्तु हू। मेरा सम्बन्ध उपाधिजन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विभावोंसे नहीं और न पुद्गलमई उपाधियोंसे है। द्रव्यकर्म और नोकर्म मेरे स्वभावसे भिन्न हैं। मै वास्तवमें अमूर्त चैतन्य-गुण–समूह हू। शुद्ध चैतन्यतामें स्थिर रहना मेरा कार्य्य है। पचइन्द्रीके विषय और विषयोत्पादक पदार्थ मेरे अहितकारी हैं। जब मेरी परिणति इन्द्री–ग्रामोंके किसी भी कोनेमें जाती है, मेरे निज स्वरूपाचरणका घात होता है। मै एक आनन्द धामसे पतित हो दु खके स्थानपर पहुच जाता हू। मेरे उपयोगमें इस जगत्के मायारूप प्रपचका राग कदापि उत्पन्न न हो–यही मेरी भावना है। मुझे पूर्ण निश्चय है कि यह शरीर–सराय, जिसमें मैं अब वास कर रहा हू, मुझसे छूटनेवाली है और इसीके साथमें इस तन-सम्बन्धी सर्व सम्बन्धी भी छूट जावेंगे। मुझे इसलिये व्यवहार-मार्गमें ऐसे कार्य्य नहीं करने जिनसे परजीवोंको सङ्क्लेश हो, परके प्राणोंको पीडा हो। अन्यायरूप आचरण मेरेसे होना आश्चर्यरूप है। मैं तो निश्चय समझ चुका हू कि–यह सर्व सम्बन्ध क्षणिक है। जबतक है तबतक इसकी रक्षा स्वधर्मावरोहणके हेतु न्याय–मार्ग-द्वारा ही कर्तव्य है। मैंने वस्तुके सम्यक् स्वरूपको जाना है। जो मेरा ज्ञान अज्ञानरूप था–वह सुज्ञानरूप हो गया है। जो मेरी परि-णति रागरूप थी–वह विरागरूप हो गई। और ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि श्रीअमृतचंद्र आचार्य्यके वचन हैं " सम्यग्दृ-ष्टेर्भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्तिः " मेरे परिणामोंकी चढन विद्यमान है। निश्चयसे मै चारित्रवान् होनेवाला हू। मेरी परिणति

एकत्व, अनेकत्व, अनित्यत्व आदि सुगंधित वृक्षोंमें इसको रमण कराता है। एक २ वृक्षके भीतर उपयोगकी चढन उतरन करता है। यह चढ़न उतरनका समय इस उपयोगको परम सुखस्वाद दिलाता है। इस अभ्यासमें पड़ा हुआ उपयोग क्रम २ से ऐसा दृढ हो जाता है कि स्ववस्तु–वाटिकामें रमण करनेको ही इसको मजा मालूम होता है। परवस्तु–वाटिकामें जो लाचारीवश उपयोग ले जाना भी पडे तौ वह उपयोग वहा तल्लीनता नहीं करता, झट अपना प्रयोजन कर स्ववस्तु–वाटिकामें आजाता है।

इस प्रकारकी वृत्ति इस मनुष्य–देह–धारीको भी सिद्ध सुखकी झलक दिलाती है और परानुभवकी वासनाको त्याग करा स्वानुभवरूप रसआनन्दको प्राप्त कराती है। जो व्यक्ति पूर्व इस व्यवस्थाके परनिमित्तमें सुख मानता था वह व्यक्ति अब स्वानुभवके आनन्दमें तल्लीन हो जाता है।

दोहा–महिमा भेद–विज्ञानकी, है अनुपम अविकार।
जो याको निश्चय करै, पहुंचे अनुभव–द्वार।

सम्यक्तीकी अपूर्व सामायक।
(१२)

पचलब्धिविजयी आत्मा अनादि भ्रमणसे थककर और भव–वनमें किसी भी स्थलपर सुखशाति नहीं प्राप्तकर अपने ऊपर पढती हुई आपत्तियोंके सामर्थ्यसे यथार्थ निश्चयकर विचारता है कि मैं एक स्वतत्र ज्ञान स्वभावधारी, अविनाशी–अनत–गुणसमूहरूप एक आत्मा–

भारी लाभ है। जो रस कभी नहीं अनुभवमें आया था वह रस स्वादमें आ रहा है—यही मेरी स्थिरता जितनी देर तककी है उतनी देरके लिये मेरा अपूर्व सामयिक है। मै राग—द्वेषसे दूर शुद्ध समता—सखीके रागमें उन्मत्त हो गया हू। यही मेरी क्षणिक समवृत्ति मेरी ध्रुव समवृत्तिके लिये साधन है। यही कारण है और मेरी सर्व विमुक्त शान्त चिन्मय अवस्था मेरा कार्य्य है। जो आनन्द कारणके प्रयोगमें है वही आनन्द कार्य्यमें भी होगा। आज परमात्माकी कृपासे भवनिमज्जनकारी आनन्दोंसे दूरवर्ती और विजातीय अनुभवानन्दको लेता हुआ मै कृतकृत्य हो रहा हू।

आत्मीक वाह्यत्म्य और अद्भुत कषाय।

(१४)

शिव—महलमें विराजनेवाली, स्वस्वरूपमानमें लवलीन, त्रिजग ऊपर अपना आसन रखनेवाली, निराली छटाको विस्तारनेवाली मुक्ति—स्त्रीके नेहमें आशक्त हो एक ससारी व्यवहारी धन, धान्य, पुत्र, कलित्र, मकान, मंदिरको छोड एकान्तमें जा अपनी प्रियतमासे मिलनेकी भावनामें लीन हो सर्व पर भावनाओंको टालता है और यह विचारकर कि तपसे ही राज्य मिलता है आप एकचित्त हो शिवतियाके स्वराज्यको लेनेकी इच्छासे अनेक कष्टोंको सहकर तप करनेके लिये उद्यत हो जाता है। अनशन तपारोही होकर अपने आत्माको किसी भी परभाव, परगुण, परपर्याय और परद्रव्यका भोजन नहीं कराता है। उसे

उसी ओर मुझे प्रेरित कर रही है, मुझे उत्कट आकाक्षा है कि, निज आत्मीकरसका स्वाद सदा लेता रहू—यही मेरा परम सुखउप- भोग है। मैंने अभी मार्गको पहिचाना है, मुझे उस मार्गपर चलना है। विना चले मुझे स्वतन्त्रता नहीं, मुझे अद्भुत स्वाधीनता नहीं। यदि कोई ऐसा माने कि मैंने आपा—परको पहिचान लिया है, मै स्वधाममें पहुच गया, मुझे अब मार्गपर चलनेका विकल्प क्यों करना, तौ वह स्वमार्ग—ज्ञानसे विमुख है। उसका अभिमान उसे सम्यग्ज्ञानी और वैरागी नहीं वनाता है। जो अभिमानके वशीभूत हो अपनेको निर्बंध मानके आचरण करते है, वे सम्यक्तरहित है, जैसा कि श्रीअमृतचंद्र आचार्य्य इस श्लोकमें कहते हैं।

" सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातुवधो न मे स्यादित्युत्तानो त्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु। आलम्ब्य तां समिति परतां ते यतोऽद्यापि पापा। आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यत्त्वरिक्ताः ॥"

मेरी भावना मुझे ऐसा नहीं बनाएगी—यह मुझे पूरी खातरी है। क्योंकि यद्यपि मुझे भापमान होता है कि मैंने स्वरूपा- चरणको ही उपादेय माना और श्रद्धान किया है तथापि मैं निश्चयका स्तभ नहीं गाड सक्ता कि मै सम्यग्दृष्टी हू ही। मै सम्यक्ती हू या मिथ्यादृष्टी-यह बात निश्चयपूर्वक अर्हत भगवान ही जानते हैं। मैं छद्मस्थ पराश्रित ज्ञानावलम्बी कैसे समझ सक्ता हू कि मेरे ऐ- सा कौनसा सूक्ष्म अश मिथ्या शल्यका विद्यमान है, जिससे मै सम्य- क्तीसा दीखता सता भी सम्यक्ती न रहू। जो कुछ भी हो इस समय मुझे मेरा उपयोग आत्मगुणोंके सन्मुख कर रहा है, यही मुझे बडा

कारी लाभ है। जो रस कभी नहीं अनुभवमें आया था वह रस स्वादमें आ रहा है—यही मेरी स्थिरता जितनी देर तककी है उतनी देरके लिये मेरा अपूर्व सामयिक है। मैं राग-द्वेषसे दूर शुद्ध समता-सखीके रागमें उन्मत्त हो गया हू। यही मेरी क्षणिक समवृत्ति मेरी ध्रुव समवृत्तिके लिये साधन है। यही कारण है और मेरी सर्व विमुक्त शान्त चिन्मय अवस्था मेरा कार्य्य है। जो आनन्द कारणके प्रयोगमें है वही आनन्द कार्य्यमें भी होगा। आज परमात्माकी कृपासे भवनिमज्जनकारी आनन्दोंसे दूरवर्ती और विजातीय अनुभवानन्दको लेता हुआ मै कृतकृत्य हो रहा हू।

आत्मीक माहात्म्य और अद्भुत कषाय।

(१४)

शिव—महलमें विराजनेवाली, स्वस्वरूपमानमें लवलीन, निजग ऊपर अपना आसन रखनेवाली, निराली छटाको विस्तारनेवाली मुक्ति—स्त्रीके नेहमें आशक्त हो एक ससारी व्यवहारी धन, धान्य, पुत्र, कलित्र, मकान, मदिरको छोड एकान्तमें जा अपनी प्रियतमासे मिलनेकी भावनामें लीन हो सर्व पर भावनाओंको टालता है और यह विचारकर कि तपसे ही राज्य मिलता है आप एकचित्त हो शिवतियाके स्वराज्यको लेनेकी इच्छासे अनेक कष्टोंको सहकर तप करनेके लिये उद्यत हो जाता है। अनशन तपारोही होकर अपने आत्माको किसी भी परभाव, परगुण, परपर्याय और परद्रव्यका भोजन नहीं कराता है। उमे

बिलकुल स्वभाव अवरोही रखकर अनशन तपमें जबतक दृढ रखता है तबतक परमानदकी भावना करता है, स्वावलम्बके मनोहर फलको प्राप्त करता है। अनशन तपसे थककर ऊनोदर तपके लिये जब उद्यम करता है तब अध्यात्मिक निश्चय व्यवहारनय संबधी विचारोंका कुछ भोजन अपनी आत्माको इसलिये कराता है कि, यह आत्मा स्वात्मस्तमवत् रहकर अनशन तपको विना किसी ओर डगमगाए पालन कर सके। यह तप भी इस आत्माको शिवरमणीके स्वादको दिलाकर और अधिक उत्साही और मुक्ति-प्रेमाशक्त करता है। जब यह आशक्तचित्त वृतपरिसंख्यान तप करता है, तब प्रतिज्ञा कर बैठता है कि, मैं अपने आत्माको ऐसा ही भोजन खिलाऊगा, जो शुद्धनय निर्मित सत्पात्रमें रक्खा हो, और ज्ञान-वैराग्य-मिष्टान्नसे निर्मित हो। इस प्रतिज्ञाको धारणकर स्वरूप सतोपको कभी विस्मरण नहीं करता है। लोभ राक्षससे सर्वथा दूरवर्ती शिवरमणीका लोलुपी इस वृतसख्यान तपके द्वारा कष्ट सहनेको आनन्दका भोग मानता जाता है। तीसरे तपकी भावनासे उपयोगको हटा जब रसपरित्यागनामा चौथे तपकी ओर दौडता है, तो यही निश्चय कर लेता है कि मै किसी पुद्गलके खट्टे, मीठे, चरपरे, कपायले, तीखे और कडुवे रसके स्वादको लेनेका नहीं, न मै दूध, घी, शक्कर, दही, तेल और नमकके स्वादको लूगा तथा मैं धर्म, अधर्म, आकाश और कालके भी किसी विलक्षण जातिके स्वादको न लूगा और सर्व पररसोंसे अतीत स्वस्वरूप रसका ही पान करूगा। यह रस मेरे अगको

जितनी तृप्तता देता है उतनी तृप्तता किसी भी द्रव्यके किसी भी रसमें नहीं है। यह तप मुझे मुक्ति-तियाकी लब्धिके उद्यममें अधिक अधिक प्रेरणा करता है। इस तपके तपनेमें सहजानन्द है, कष्टका नाम तक नहीं। जब अपने उपयोगको विविक्तशय्यासन नाम पाचवें तपमें लेजाता है तब सर्व प्रमादकी शय्या और मोहके आसनोंको त्याग देता है और इनसे दूरवर्ती होकर असख्यात प्रदेशवाली निजात्म—शय्या और निजभावके दृढ आसनपर बैठनेका सकल्प कर लेता है। यह अद्भुत शय्या और आसन इस आत्माके तनको जो आराम देते है वह आराम सिवाय शिवलोकके अन्यत्र नहीं है। यह मुक्ति-तियाशक्त प्राणी इस प्रेममें इस पाचवें तपके द्वारा कुछ भी कष्ट न पा अद्भुत साताकी प्राप्ति करता है और आल्हादित हो इस साहसको बढाता जाता है कि मैं अवश्य शिवरमणीका वर होऊगा।

छठे कायक्लेशनामा तपके सगममें जब यह लोभी जीव आजाता है तब यह सकल्प कर लेता है कि मैं अपनी चैतन्य कायको स्थिर, दृढ और ऐसा तल्लीन रक्खूगा कि उसपर लोकके चेतन और अचेतन पदार्थ चाहे जितनी औपाधिक भावोंकी वर्षा करें व औपाधिक द्रव्योंका सघट्ट करावें, परन्तु यह आत्मा अपनी कायको किंचित् भी चलायमान न करेगा। इस आश्चर्य्यमई कायक्लेशको करते आत्माको वास्तवमें कोई क्लेश नहीं, किन्तु सर्वथा आनन्द है। क्लेश तो उसी वक्त होता है जब कोई किसीके स्वभावको बिगाडे। जब मेरे स्वभावको पतन करानेको किसीमें सामर्थ्य नहीं, तब मैं अपने

स्वरूपकी दृढतामें सिवाय आनन्दके कभी कोई क्लेश पानेका नहीं हू। धन्य है ये छःतप ! इनकी सहायता मुझे परम सन्तोषित और पुष्ट कर रही है। वास्तवमें यह बाह्य तप तप ही कहलानेके योग्य हैं, क्योंकि जहातक सकल्प सहित विचार है वहातक निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान नहीं। निर्विकल्प स्वसवेदन ज्ञान ही साक्षात् अतरग भाव है। परन्तु जबतक इस भावकी प्राप्ति नहीं तबतक मुझे इन छ वाह्य तपोंको अवश्य निरन्तर तपना चाहिये। यद्यपि इनका सयोग मुझे निर्नाम नहीं बनाता, मुझे गुणस्थानोंसे अतीत नहीं रखता, किन्तु मुझे षट् गुणस्थानवर्ती रखकर सज्वलन कषायावरोही साधुके नाममें गुठित रखता है सो सत्य ही है। मेरेमें इतना लोभ है कि, मै तीन लोक–विजयी शिव–तियाके राज्यको पाऊ। मेरेमें इतना क्रोध है कि मैं स्वस्वरूप मग्न ध्यानाग्निसे पुद्गलीक कर्म-वर्गणाओंको दग्ध करू। मेरेमें इतना मान है कि मै अपनेको सिद्ध समान सर्वोत्कृष्ट पवित्रात्मा समझता रहू। मै इस मानमें अपनी वर्तमान सासारिक अवस्थाको भूल जाता हू। मेरेमें इतनी माया है कि सिद्ध और अर्हत पदके अयोग्य ऐसे शुद्ध सकल्पोंको करते हुए भी मै ऐसा ही मानता हू कि मै स्वय सिद्ध तथा अर्हतवत् आचरण कर रहा हू। मेरी मानता कुछ है और आचरण कुछ है–यही मेरी माया है। इन चार कषायोंका सगी होकर मैं निसंगी कैसे कहला सक्ता हू? यद्यपि ऐसा है तथापि मैं मुक्ति-तियामें आशक्त होकर सर्व सासारिक और विनाशीक आनन्दोंसे करोडों कोसे दूरवर्ती अनुभवानन्दका ही स्वाद लेता हू।

अध्यात्मीक अंतरंग तप ।

(१९)

निजसत्वविलासी, परभावसे उदासी, सम्यग्दृष्टी, यथार्थ मोक्ष, मोक्षसुख और मोक्षके कारणका ज्ञाता, स्वरसस्वाद लेनेका उत्सुक, षष्ठम सप्तम गुणस्थानावरोही, विषयसुखको मनमन बाधाकारी, अनुपम गाढ विष सम श्रद्धा करनेवाला अतरात्मा आज अतरग तप तपनेमें तल्लीन हो रहा है। शुद्धात्म वृत्तिका धारण ही शुद्ध चारित्र है। इस स्वरूपाचरण अनुभवसे जब इसकी वृत्ति हटकर और इतस्तत. डगमगाकर परानुभवमें प्रवृत्त कर जाती है, तब यह अतरात्मा अपना बडा भारी अपराध समझ शुद्धात्म स्वरूपमें दृढतासे आचरण करनेवाले आचार्योंकी अज्ञानुसार स्ववृत्तिको बलात्कार परसे फेर स्वमें स्थिरकर प्रायश्चित्त नाम अतरग तपका मनन करता है।

शुद्धात्म स्वरूप ही उपादेय है-ऐसी दृढ रुचि सम्यग्दर्शन है। स्वसवेदन ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। निर्विकल्प वीतराग स्वरूपानुभव ही सम्यग्चारित्र है। ये तीन होनेपर भी एक हैं। मेरा ही आत्मा इन तीन स्वरूप है। जहा निर्विकल्पता है वहा यह आत्मा अपने स्वरूपानुभवमें ठहरा हुआ परम आनन्द भोगता है। यह अतरात्मा इस प्रकार त्रिमूर्ति-स्वरूप ब्रह्म-पदका पूर्ण सत्कार करता हुआ निरन्तर स्वरुचिके विषयस्वरूपरत्नत्रय रूप स्वबोधिको अपने अतरग समाधि-पुटमें अत्यन्त रुचिसे रखनेका उद्यम करता है और इसी कारण जिन २ महात्माओंने इस बोधिका सेवन कर स्वकल्याण किया है

उनकी ओर भी परम रुचिभाव धारण करता है। इस तरह अतरा विनय तपका अभ्यास कर सुखी होता है । स्वरूप मनन करने वा ले साधु समाजकी स्थिरतारूप परमभक्ति सहित बाह्य वैय्यावृत्यको आवश्यक्तानुसार करते हुए भी अतरग वैय्यावृत्यको नहीं भूलता है। वीतराग विज्ञानता ही मोक्ष साधक है, इस भावपर दृढतासे आ रूढ़ होते हुए भी जब किसी कारणवश इस भावसे उपयोग डग मगाता है तब यह अतरात्मा शीघ्र सचेत हो निजउपयोगकी सेवा श्रुतज्ञान द्वारा करता हुआ मोक्ष–साधक भावको स्थिर करते हुए वैय्यावृत्य–तपमें प्रवीणता प्राप्त करता है ।

अनादि कालपर अध्ययनकी खोटी टेवका तिरस्कार करके भेद ज्ञानके द्वारा उन अविनाशी षट् द्रव्योंके गुण और पर्यायोंका विचार कर कि, जिनसे यह त्रिलोक अनादि कालसे अपना नाना प्रकारका रूप दिखला रहा है और अनत काल तक दिखलाए जावेगा । यह अतरात्मा अपने आत्मस्वरूपके शुद्ध जातीयत्वको आकर्षण करता है और एकाग्र चित्त हो रूपातीत ध्यानमें मग्न हो अपनी ही वस्तुका अध्ययनकर निश्चय **स्वाध्यायमें** लयता प्राप्त करता है । जब कभी परिणाम विचलित होते है तो शीघ्र ही जिनवाणीके मनोहर सूत्रोंका अध्ययनकर फिर अपने ही आसनमें अचल हो जाता है ।

शरीर अशुचि और जड वस्तुओंसे निर्मित होकर और जड़ वस्तुओंसे पालित किये जानेपर अपने भीतर मल–समूहको अधिकतासे धारण करता हुआ नवद्वारोंसे मल ही को निकालता है तथा चैतन्य आत्माके सग हो करके भी कभी चेतन नहीं होता, अपने

जड़त्वको त्यागता नहीं है। बाह्य औदारिक शरीरके सिवाय तैजस और कार्माण शरीर, जो एक समयमात्र भी संसारी जीवका साथ नहीं छोड़ते, जड पुद्गलमय होकर चैतन्यकी संगति करते हुए भी जड ही रहते हैं। अंतरात्मा ऐसे शरीरोंके वास्तविक स्वरूपोंमें दृष्टि रख अपने अनादि भ्रमको टाल शरीरोंको अपनेसे सर्वथा भिन्न समझकर उनसे नेह त्यागता है और निर्मोह हो स्वरूपाचरणमें स्थिर होकर व्युत्सर्ग नाम तपका सम्यक् अभ्यास करता है।

पांच प्रकार अंतरंग तपोंको साधन रूप मानता हुआ अंतरात्मा निर्विकल्प समाधिके मध्यमें लीन होता है और सर्व जगत्से प्रयोजन छोड एकाग्र चित्त हो स्वानुभवरसास्वादको लेकर सर्वोत्कृष्ट ध्यान रूप महान तपको अंगीकारकर परमानंद भोगता है।

इस प्रकार उपर्युक्त पट् अंतरंग-तपोंमें सावधान, सम्यक् श्रद्धा-वान अंतरात्मा, जिस क्षणभंगुर सुखकी वासनामें अनादि काल खो चुका है, उस सुखको दुःख-बीज जान भवभ्रमणकारी आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

गुफामें विश्राम।

(१६)

ज्ञान-सूर्य्यकी प्रभा अनादि मिथ्या भ्रमको एक समयमें नाश-कर देती है। इस श्रद्धाका रखनेवाला अंतरात्मा आज कुमति-

उनकी ओर भी परम रुचिभाव धारण करता है। इस तरह विनय तपका अभ्यास कर सुखी होता है। स्वरूप मनन करने ले साधु समाजकी स्थिरतारूप परमभक्ति सहित बाह्य आवश्यक्तानुसार करते हुए भी अतरग वैय्यावृत्यको नहीं भूलता है। वीतराग विज्ञानता ही मोक्ष साधक है, इस भावपर दृढतासे आरूढ होते हुए भी जब किसी कारणवश इस भावसे उपयोग डगमगाता है तब यह अतरात्मा शीघ्र सचेत हो निजउपयोगकी सेवा श्रुतज्ञान द्वारा करता हुआ मोक्ष—साधक भावको स्थिर करते हुए वैय्यावृत्य—तपमें प्रवीणता प्राप्त करता है।

अनादि कालपर अध्ययनकी खोटी टेवका तिरस्कार करके भेदज्ञानके द्वारा उन अविनाशी षट् द्रव्योंके गुण और पर्यायोंका विचार कर कि, जिनसे यह त्रिलोक अनादि कालसे अपना नाना प्रकारका रूप दिखला रहा है और अनंत काल तक दिखलाए जावेगा। यह अतरात्मा अपने आत्मस्वरूपके शुद्ध जातीयत्वको आकर्षण करता है और एकाग्र चित्त हो रूपातीत ध्यानमें मग्न हो अपनी ही वस्तुका अध्ययनकर निश्चय स्वाध्यायमें लयता प्राप्त करता है। जब कभी परिणाम विचलित होते है तो शीघ्र ही जिनवाणीके मनोहर सूत्रोंका अध्ययनकर फिर अपने ही आसनमें अचल हो जाता है।

शरीर अशुचि और जड वस्तुओंसे निर्मित होकर और जड वस्तुओंसे पालित किये जानेपर अपने भीतर मल—समूहको अधिकतासे धारण करता हुआ नवद्वारोंसे मल ही को निकालता है तथा चैतन्य आत्माके सग हो करके भी कभी चेतन नहीं होता, अपने

है और यकायक सम्पूर्ण थकनको दूरकर स्वानुभवकी शांत निद्रामें शयन कर जाता है। इस शयनमें बेखबरी नहीं है। इस शयनमें अचेतता नहीं है। यह शयन चैतन्यताकी चादरसे आच्छादित है। यहा निरानन्द नहीं, किन्तु सदा आनन्द है। इस गुफामें ठहरनेवाले अतरात्माको न विषय-चोर सताते और न कषाय-लुटेरे व्याकुल कर सके है। स्वदेश गमन करनेवाले व्यक्तिको ऐसी गुफाकी प्राप्ति परम सौभाग्यकी बात है। यह अतरात्मा इस रमणीक स्थानमें विश्राम करता हुआ बाधाकारी आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानीकी दशा।

(१७)

निश्चय स्वपदभासी, निजदुर्गविलासी, जगत्प्रतिभासी एक पक्षी भववन भ्रमणमें पडा कमलनालरूप जगमें लटकता हुआ, तिसके त्यागमें अपना-नाश विचारता हुआ भ्रम-बुद्धिसे उसको स्वय त्याग देनेकी निज शक्तिको विस्मरण किये हुए, उसको छोडके जानेकी इच्छा रखते हुए भी नहीं छोड़ता है और वृथा ही विपर्ययरूप औंधा लटका हुआ अपने पाखोंको बार बार झटकारता है और अनेक त्रास पाता है। इस मिथ्याबुद्धिका घरैया चेतनपक्षी अपनी अनत शक्तिको वृथा ही रख परके जालमें पडा विपत्तिग्रस्त हो रहा है। अपने निकट आनेवाले अन्य जीवरूप पक्षियोंको अपना हितुमान उनसे मोह करता

नारीको सदाके लिये त्यागकर सुमतिके रागमें रञ्जित हो गया है। मोहनीकर्मके द्वारा चढ़ा हुआ बिलकुल आपेको भुलानेवाला अतरात्माका नशा उतर गया है। यद्यपि अभी इतना । विद्यमान है कि, जिससे अपने आपको न भूलता हुआ भी यह अतरात्मा पर पदोंमें थोडी थोडी देरके लिये प्रीति कर लेता है, कभी द्वेप भी कर लेता है, तौ भी स्वस्वरूप अनुभवकी रुचिको लिये हुए है। ऐसा अतरात्मा बहिरात्म-बुद्धिको त्याग परमात्मा होनेका इच्छुक सुमति--नारको सग लिये हुए परदेशमें अपनी क्षुधा तृप्ति होते न देख शिव--नगर नामक स्वदेशकी ओर प्रयाण करता है। रास्तेमें एक रमणीक बनमें आता है, जहा शुभभावनारूप बारह वृक्ष अत्यन्त मनोहर प्रचुर शात छायाको विस्तारनेवाले शील सुगधसे सारे बनको महकानेवाले बहुत ही सघन भावरूप पत्रोंके भारसे नम्रीभूत अपनी छटाको विस्तार रहे हैं। उस बनके निकट ही एक सरोवर बहुत लम्बा चौडा चौकोंण अत्यत उज्ज्वल, मिष्ट और अविकारी सम्यग्ज्ञानरूप सुधासे भरा हुआ मद मद लहरें ले रहा है। सरोवरके निकट ही एक अत्यन्त सुडौल और मनहरण स्वचारित्र नाम पर्वत है, जिसकी शोभाको देखते देखते अंतरात्मा पर्वतके निकट जा उस अनुपम गिरकी एक त्रिगुप्त रूप गुफामें जाता है और सुमतिनारीके साथमें बैठकर विश्राम लेता है। ससारके भ्रमण और इष्ट-वियोग अनिष्ट-सयोग रूप विकल्प तथा इंद्रिय विषयोंकी प्राप्तिमें उलझनरूप सकल्प आदि उपाधियोंके खेदसे दु खी हो यह अतरात्मा स्थिर चित्त करके विराजता है और अपने विवेकरूपी चाकरके द्वारा सरोवरका मिष्ट जल मगा पान करता

आप चुराकर चोर बनता है और कहता है परवस्तु जबरदस्ती मेरे पास आई है। ऐसी बावलेपनकी बात मानकर परका ग्रहण त्यागता नहीं। यह मिथ्यादृष्टी हीरेको काच और काचको हीरा समझ रहा है। जो देव, गुरु और शास्त्र भवदु खोंसे रक्षितकर अनत अविनाशी सुखके मार्गमें नेता हैं और स्वय भवके औपाधिक भावोंसे पृथक हैं, उनको यह अपना हितकारी नहीं समझता है। जो देव, गुरु, और शास्त्र पचेन्द्रिय विषयोंके मार्गमें लेजानेवाले और विषयोंका लोभ दिखानेवाले तथा स्वय भी विषय—वासनामें लीन है, उन्हींको अपना हितकारी समझकर सेवन करता है।

हाय! हाय!! कितनी बड़ी भूल है!!! आप चेतन होकर मृतपिड जड़से सगाई करता है और इस सगाईके सहकारी झूठे देव, गुरु और शास्त्र और झूठे तत्त्वोंको अपना मानता है। और इस कारण अतृप्तिकारक इन्द्रिय—जनित सुखाभासोंको सुख कल्पकर उनकी तृष्णामें दिनरात जला करता है। अतरगमें अपने पास अटूट धन है, उसकी श्रद्धा करता नहीं, उसका ज्ञान करता नहीं, उसका मनन करता नहीं, जिस ओर एक क्षण मात्र भी दृष्टि हो जाय तो यह अपूर्व धन अपना ऐसा अपूर्व स्वाद उस व्यक्तिको देता है कि वह फिर कभी उसको त्यागनेका नहीं। जो कभी अनादि भ्रमवश विमुख भी हो जाय तो कभी न कभी वह फिर निज धनको सम्हारे ही गा। खेद है, मोहमद मिथ्यातीको इसकी खबर नहीं।

है और जब वे पक्षी अपनी २ पर्य्यायको पूर्ण कर चले जाते हैं, तब यह अत्यन्त विलापकर रोता है। बडी भारी भूल है कि, आप अनत धनका धनी होनेपर भी अपनेको रक, दरिद्री और दीन समझ रहा है। यह जगरूपी ताल जिसे पकडे रहकर यह छोडता नहीं है, मात्र सर्वथा निर्बल जडरूप है। यह कदापि इस पक्षीको पकडना नहीं चाहती, न कभी पकडती है और न पकडे है। यही मूर्ख इसे पकड कर विपरीत बुद्धि हो रहा है। पाचों इंद्रिया और उनके विषयरूप पदार्थ सर्व जड़ है। वे जडपदार्थ इस चेतनको बुलाते नहीं, इसे चाहते नहीं, इसे पकडते नहीं, परन्तु यह मूर्ख प्राणी स्वय ही उनको पकडता है और उनके मोहमें लुब्ध हो जाता है। कोई पूछता है, क्यों भाई! इन जड़ वस्तुओंको क्यों पकड रक्खा है? अपना चेतन-धन अपने पास है, उसे क्यों नहीं ग्रहण करते हो? सुन कर यह गहला प्राणी उत्तर देता है कि, मै क्या करूं यह विषय मुझे छोडते नहीं। २४ घटे मेरे मनको त्यागते नहीं, मैं यद्यपि इन्हें त्यागना चाहता हू और कभी एकान्तमें बैठ इनसे अलग भी रहना चाहता हूं और इसके लिये किसी इष्ट देवका नाम भी लेता हूं तब भी ये विषय मुझे छोडते नहीं। वहीं आकर मेरे मनको भ्रमाते और अपनी ओर खीच लेते हैं। मैं क्या करूं? लाचार हू! इन विषयोंसे मैं हार गया!!

हाय! हाय!! बडा आश्चर्य्य है!!! यह मिथ्याती मोह मदिराका पीनेवाला अपना किया अपराध दूसरेके सिर डालता है। परवस्तुको

अपने धनको इन्द्रिय-विषयोंका सहकारी जान अन्योंको निर्धन समझ आपेसे बाहर होने लग जाता है। अपनी आज्ञा यदि कुछ भी चलती हो तो उस अधिकारके कारण अपना बड़प्पन मानने लग जाता है। यदि व्याकरण छद, अलंकार, कविता व अन्य किसी विद्यामें चतुर है तो उससे अपनेको बडा मान अविद्या-धारकोंको तुच्छ समझना शुरू करता है और आप विद्याके मदमें भरकर अपनी स्वामाविक केवलज्ञान-विद्याको भूलने लग जाता है। यदि व्रत, उपवास, जप, तप और ध्यान विशेष रीतिसे करता है तो इसी मदमें लवलीन होने लगता है कि हमारे सदृश दूसरा कौन इतना कष्ट उठा सक्ता है? जो जप, तप आदि कषाय घटानेके साधन है, वे ही इस सासादन गुणस्थान वालेके अभिमान बढ़ानेके निमित्त कारण हो जाते है। इस गुणस्थानमें कभी २ अनन्तानुबंधी क्रोधकी तीव्रता भी सताती है, जिससे यह जीवात्मा इन्द्रिय विषयोंमें विघ्नकारक चेतन तथा अचेतन पदार्थोंकी ओर क्रोधकी झलकमें डूबने लग जाता है। इस तरह ऊपर लिखे चारों कषायोंमेंसे एकका भी उदय आजानेसे यह जीवात्मा तुरन्त चौथी सीढीसे पहलीपर आजाता है और मार्गमें जैसे वृक्षसे गिरता हुआ फल कुछ देर ठहरता है, उसी तरह यह सम्यग्दृष्टी बीचमें कुछ काल लगाता है, उस समय इसको सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं। जैसे सूर्य्य सध्याकालके समय अस्त होते हुए अपनी ज्योतिको मंदकर किंचित देर रक्तवर्णको दिखला तिमिराच्छन्न हो जाता है, उसी तरह यह जीवात्मा शुद्धात्मतत्त्वको ही उपादेय माननेवाला अ-

वृत्तिको खींचकर अपने स्वरूपमें लीन करना, यही इस बातका उपाय है कि मैं तीनों गुफाओंसे बाहर हो जाऊ और अपूर्व तेजको प्रकाशित करता हुआ शुद्धात्मा रहू । इस निश्चयका धारी उपशम सम्यग्दृष्टी अपनी अनादि अविद्याके वश जब कभी अनन्तानुबधी कषायके वश हो जाता है कि, उसी समय सम्यक् श्रद्धासे पतित हो मिथ्यात्व गुणस्थानमें आने लगता है । मध्यमें अधिकसे अधिक छः आवली (असख्यात समयोंकी एक आंवली) और कमतीसे कमती एक समय ठहरकर **सासादन गुणस्थानमें** रहनेवाला कहलाता है। जिस समय सम्यक्तसे खिसकता है । इन्द्री विषयोंकी वह गहलता जो सम्यक्तमें नहीं थी पैदा होने लगती है । वह गहलता अनतानुबधी लोभके वश इसी निश्चयमें पटकने लगती है कि–विषय सुख ही सुख है, इसकी प्राप्ति करना ही उपादेय है । इन इन्द्रिय विषयोंकी गहलता चित्तमें कभी मायाको भी पैदा कर देती है, जिससे यह विचार आने लगता है कि परका विश्वासघात हो व परको हानि हो, हमको तो पर-वचकतासे भी विषय-सुखकी प्राप्ति करनी चाहिये बाह्य धर्म जो सम्यक्त गुणस्थानमें मोक्ष साधनके लिये करता था वह वाह्य धर्म अब मायाचार–रूप हो जाता है । कभी अनन्तानुबधी मान की तीव्रता हो जाती है। जिन आठ प्रकार मदोंको सम्यग्दृष्टी नहीं जड़ पकडने देता था, उन्हीं मदोंमें उन्मत्तता बढने लग जाती है अपनी जाति और अपने कुलके परिग्रहको विचार अभिमान करने लगता है । अपने रूपको सुन्दर देख मदकी वायुसे भरने लग जाता है अपने बलको दूसरोंसे अधिक जान मानसे भरने लग जाता है

मिश्रगुणस्थानका दिखाव ।

(१९)

अपने पदमें आनन्द माननेवाला, स्वानुभूतिका कर्ता और भोक्ता, रागद्वेषादि परानुभूतिके कर्तृत्व और भोक्तृत्वसे पराङ्मुख समग्दगात्मा अपने पासमें गुपचुप रहनेवाली सात (४ अनतानुवन्धी और ३ प्रकार मिथ्यात्व) कर्म प्रकृतियोंको दबाए हुए आत्म-उपवनकी सैर करता है और जगत्के षट् द्रव्यमई प्रपच जालमें नहीं फसकर अपने द्रव्यके गुण और पर्यायोंको सर्वसे भिन्न अवलोकन करता है । एकान्त मननके रसमें भीगा हुआ रहकर कुछ विश्राम लेता है कि दर्शन मोहनीय कर्मकी सम्यक्मिथ्यात्वनामा कर्म-प्रकृति अपने बलसे उठ आती है और जहा केवल प्रकाश था वहा अपनी परछाई डाल मलीनता करती है, जिससे निर्मल प्रकाश धुधला प्रकाश हो जाता है । जैसे बाल-सूर्य्यके निकलते समयका प्रकाश अथवा अस्ताचलपर पहुचनेवाले सूर्य्यका प्रकाश थोडी देरके लिये तिमिरसे मिलकर धुधला अर्थात् तम मिश्रित हो जाता है, ऐसे ही इस सम्यग्दृष्टीकी परम रुचि मिथ्यात्वसे होने वाली अरुचिके साथ मिलकर एक भिन्न ही जातिकी अवस्थाको प्रगट करने लगती है । अहा ! जो ज्ञाता दृष्टा अभी अपनेको ज्ञाता दृष्टा ही मानता था, वही बातकी बातमें क्रोधादि परभावोंका कर्ता भी अपनेको मानने लगा। जो आत्मा अपने निश्चयमें दृढ था, वही एक समयके फेरसे ऐसे भ्रममें पडा कि अपनी शारीरिक पर्य्यायको भी उपादेय मानने लगा। जो भेद ज्ञानी अपनी विवेक

परवाह करता नहीं । इस सम्यग्दृष्टीका स्वभाव स्वय सबररूप है, सभी परद्रव्योंसे निर्जरित और मुक्त है । जब यथार्थ तामें विराजित है तब सात तत्त्वों और नौ पदार्थोंके प्रपच जालसे पृथक है, जुदा है, अत्यन्त विलक्षण है । इस स्वरूपके मोहमें मोहित हो मैं भी इस रूप अपनेको बनाता हू और चतुर्थगुणस्थानवर्ती होकर अपनी गत पर्यायोंकी प्रणालीको अपने भ्रमका फल मानता हुआ, शुद्धाचरण और स्वयसिद्धताको सर्वदा उपादेय निश्चय करता हुआ, उस ओर परम रुचि रखता हुआ, गृहस्थकी व्यवहारिक पौद्गलिक रचनामें चलता हुआ भी उस रचनासे अपनेको इसी तरह जुदा रखता हू, जैसे जलमें रहता हुआ कमल जलको अपनेसे जुदा रखता है । मेरी अवस्था उस कैदीके समान हो जाती है, जिसके लिये कैदसे छूटना तय हो चुका है । अनत ससारका कारण मिथ्यात्वकी सहकारी अनतानुबन्धी कषायकी ४ प्रकृति और मिथ्यात्वकी तीनों प्रकृति । मेरी सत्तासे श्रीकेवली और श्रुतकेवलीकी पाद सेवाके प्रसादसे जब दूर हो जायगी तब मै क्षायकसम्यक्तका भोगी होकर अधिकसे अधिक ३३ सागर ८ वर्ष कम २ कोड पूर्व और एक अतर्मूहूर्त पुद्गलको लाचारीवश इधरसे उधर करता हुआ अतमें सिद्ध निरजन परमात्मा हो जाऊगा । यदि इन सातोंमेंसे छ के उपशम और एक सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वके उदयसे क्षयोपशम सम्यक्ती होऊगा तौ भी उत्कृष्ट ६६ सागर ही जडके अखाडेमें कसरत करता हुआ मोक्ष—महलमें पहुच जाऊगा । यद्यपि इस दशामें मै चल—मल—अगाढ रूप रहूगा, तथापि अपनी

सम्यक्त भूमिका कभी त्याग नहीं करूगा। परन्तु उपशम सम्यक्त मुझे एक अतमुर्हूत ही स्वरूप निश्चयावलम्बी रखता हुआ फिर अपनी निर्मल परिणतिसे गिराकर मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र अथवा क्षयोपशम सम्यक्में रख देगा। तथापि जो एक दफे मैंने अपने भडारके दर्शन कर लिये है तो गिरता, पडता, चढता, उतरता, अवश्य मैं अपने भंडारको अपना ही बनाऊगा और उसपर अचल अधिकार जमाकर परद्रव्य क्या, परद्रव्यकी सम्पूर्ण वासनाओंको दूर फेंक दूगा। इस चौथे दर्जेकी जय हो, जिसमें आते ही यह जीव ससारसे अलग हो जाता है। जो जीव इस गुणस्थानमें ठहरते हैं वे अपनेको सिद्ध ही समझ लेते हैं। उनका स्वरूपानुभव उसी आनन्दको प्राप्त करता है, जो आनन्द सिद्ध परमात्माको है। ऐसे अद्भुत सुखका भोगी यह आत्मा मनुष्य-गतिमें क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रके कर्म करता हुआ पशु-अवस्थामें सिंह, व्याघ्र, बैल, बदर, हाथीकी पर्यायमें जन्म बिताता हुआ नरकगतिमें नारकियों द्वारा निरतर मार धाड सहता हुआ व देव-गतिमें इन्द्रिय-जनित सुखोंको भोगता हुआ भी अपने स्वरूपकी परमभक्तिसे च्युत होता नहीं, अपने आत्माको अपनी देह और पुद्गल विकार रागद्वेपादिकोंसे आकाशवत् जुदा मानता हुआ उसके अनतगुणोंके भीतर रजायमान होता है और अपनी शिवरमणीमें आशक्तता धारता हुआ तथा उसीके सरणमें अन्य जगत्को तुच्छ गिनता हुआ यह आत्मा अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

श्रावकका मोक्ष–महलमें प्रवेश।

(२१)

आनन्द-प्रदायिनी, साधु-मन-मोहन रूप-धारिणी, अप्रमाण शांत-कला–स्वामिनी, अद्भुत स्वरूपा नारिके रूपमें मोहित हो एक जीवात्मा उसके शांत सरोवर और सुगुण उपबनसहित दस खने महल-के द्वारपर आकर उस नारिसे मिलनेकी गाढ रुचिके कारण उद्यम-शील हो रहा है। वह परम प्राणप्यारी दस खने महलके शिखरपर विराजित है। जो कोई साहसकर महलके ऊपर तक चढ आ सक्ता है, वही इस नारिसे सम्मिलनका लाभ उठा सक्ता है। यह मोही शिव–नारिमें आशक्त–चित्त सांसारिक सर्व संयोगोंको हेय जानता हुआ तथा अपनी परिणतिमें वैराग्यकी क्रान्तिको विस्तारता हुआ इस महल-पर चढनेकी भावना करके अपना पग आगे बढाता है। इस मह-लके खन बहुत बिकट और घुमाऊ बने हैं। जिसके सामनेसे अप्र-त्याख्यानावरण कषाय अपने बलके चलानेमें असमर्थ हो जाती है, वही इस महलके पहले खनमें जासक्ता है। इस महलके पहले खनके ११ भाग है। यह आशक्त मन क्रम क्रमसे चढनेका व्यापार करता है। कषाय–अंशोंकी ज्यों ज्यों घटन होती है, त्यों त्यों यह चढता हुआ ११ विभागोंको तय करता है। ज्यों ज्यों यह चढता जाता है, त्यों त्यों शिवनारिसे मिलनेकी आशाको बढाता जाता है और त्यों त्यों शिवानंदकी गाढ रुचि आनन्द प्रदान करती जाती है।

अष्टमूलगुण–धारी और सप्तव्यसन–त्यागी होकर पंच परम आ-

त्मस्वरूप-अनुभव-कारकोंमें भक्ति रखता हुआ पहले भागको तय करता है। अतीचाररहित पच अणुव्रत और सात शीलोंका अभ्यास करता हुआ दूसरे भागका भागी होता है। इस भागमें चलनेवाला गृहस्थ षट् प्रकार आजीविकाको साधकर तथा अर्थ और काम पुरुषार्थकी भले प्रकार सिद्धि करता हुआ सामायिक, देवपूजा और स्वाध्यायके द्वारा इन्द्रिय विषयरहित आनन्दका स्वाद भी लिया करता है। महामुनि तथा त्यागियोंकी भक्ति और वैय्यावृत्यमें हुलसायमान रह अपनी ज्ञान वैराग्य–शक्तिको बढाता जाता है। तीसरे भागमें आकर त्रिकाल द्विघटिका समायिकका आरम्भकर आत्मीकरसको प्राप्त करता रहता है। जब चौथे भागमें जाता है, तब प्रतिपर्वीमें उत्कृष्ठ १६ प्रहर गृह व्यापारारम त्याग शिवनारीका ध्यान किया करता है। पाचवेंमें आकर उदर पोषणार्थ सचित्त-भोजन-पानसे विरक्त हो जाता है। छठेमें जब जाता है, दया–चित्त रात्रिको मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे चार प्रकार आहारका त्याग करता है। सातवें भागमें आकर जिस नारिको उदासीन वृत्तिसे भी अपने कषाय-अशोंकी अधिकतासे सेवन करता था, उस नारिको भी अपनी शिवनारिकी अत्यन्त आशक्तताके कारण त्याग देता है और ब्रह्मानदमें आचरण करनेके लिये ब्रह्मचारी हो जाता है। आठवें भागके मैदानमें आ, जिस आरम्भके कारण थोडे समयके लिये ही स्वस्थ चित्त होता था, उस आरम्भको अपना विरोधी जान छोड देता है। नवमें भागमें परिग्रहकी गठडीको जुदाकर उसकी भी चिन्तासे रहित होता है। दसवें भागमें आ अपने मन, वचन,

कायसे किसी भी आरम्भिक क्रियामें सम्मति देना त्याग देता है। दसवीं मंजिल तयकर जब ग्यारहवें भागमें आता है, तब क्षुल्लक अथवा ऐल्ककी रीतिसे अपना जीवन विताता हुआ पहले खनमें रह अत्यन्त आनन्दित होता है और अपना अहोभाग्य मानता है कि धन्य हूं मैं, अब मैं अपनी प्राणप्यारीसे शीघ्र ही मिलूगा। इस खनपर चढना अति कठिन था। इस खनपर विश्रामकर पचम गुणस्थानवर्ती रह आगेके खनमें जानेको उत्साही रहता है। निश्चय-साधक व्यवहारका पूर्ण सन्मान करता हुआ शिवतियामें आशक्त, सम्यक्तधारी, स्वगुणविहारी जीवात्मा पहले खनकी अत्यन्त मनोहर शोभाको देखता है और हर समय अतीन्द्रिय आनन्दको उपादेय मानता हुआ उसीकी वासनामें दत्तचित्त रहता है। इस मोहीकी वृत्ति भी सासारिक वृत्तिसे विलक्षण होती है। स्वात्मानुभवमें तल्लीनताकी रुचि बढती जाती है। अपनी स्वरूप-शय्यापर शयन करता हुआ शिवनारिके ध्यानमें लीन होता हुआ, आत्मारामकी सैर करता हुआ, अपनी अतरदृष्टिसे तीनों लोककी वस्तुओंसे अपना स्वभाव जुदा करता हुआ, यह अतरात्मा अपने अनुपम हर्षके रंगमें उन्मत्त हो ऐसा बन जाता है, मानों अपने स्वरूपके बाहिर किसीको जानता ही नहीं। ऐसा जगत्से अध, परन्तु स्वरूपका ज्ञाता, दृष्टा, सर्व बाह्य औपाधिक भावोंसे दूर रह, अपने निर्मल भावमें निजत्वको विस्तारता हुआ, स्वरूपावलम्बी रह अनुभवानन्दका स्वाद लेता है। धन्य है यह पुरुष! जो अपने पुरुषार्थके बलसे उच्चस्थानको प्राप्त करता है। जो कोई व्यवहारी ऐसे स्वगुणस्वादीका हृदयंत आदर

करते हैं वे भी कालान्तरमें स्वरस ग्राही होकर अनुभवानन्दका स्वाद लेवेंगे, इसमें कोई शंका नहीं, इसमें कोई विरोधी नहीं। श्रीपरमात्माकी अनोखी कृपासे यह अनुभवानन्द जयवन्त रहे, जिसके प्रथम खन सन्मुखी स्वादकी इच्छा चौथे गुणस्थानवर्ती देव, नारक, नर और पशु किया करते हैं। जो जीव इस अनुभवानन्दके रसको एक क्षण भी प्राप्त करते हैं वे धन्य हैं, वे सराहनीय हैं, वे प्रशसनीय हैं।

प्रमत्तसंयमीकी आशक्तता।

(२२)

अनुभवानन्दका सागर, परमात्मस्वरूप शुद्धताका अवलम्बी, स्वगुण-समाधानी, आत्म-ज्ञानी, अभेद रत्नत्रयस्वरूप मैं हूं ऐसी मान्यताका प्रकाशी व्यवहार–पर्यमें अपने उपयोगका अधिक दुरुपयोग होता जान शात वैराग्य आत्म–ज्ञान मिश्रित उपयोगके विघ्नकारक द्रव्य और भावपर्यायोंसे मोह हटा पाचवीं श्रेणीसे सातवींमें आता है। और जैसे अत्यन्त मिष्ट जलके इच्छुकको पहले उतना मिष्ट जल नहीं मिलता था, अब अपने अभिप्रायके अनुसार मिष्ट जलको पाकर उसको अत्यन्त अनुरागसे दिलभरके पीता है, फिर हट जाता है, वैसे ही यह अतरात्मा अत्यन्त शुद्ध भावोंका इच्छुक जब सातवीं श्रेणीमें अपने अभिप्रायानुसार शुद्धभावोंका अवलम्ब पाता है तो अपनी शक्ति भर उन भावोंसे आत्म–रस पिये विना नहीं हटता है। शक्तिके अभावमें हटकर छठे प्रमत्तगुणस्थानमें आजाता है।

इस गुणस्थानवर्ती आत्माको गृह फदके मोह—जालमें न फसानेवाले तथा रागकी रगतसे दूर रखनेवाले बाह्य अनेक कारण विद्यमान हैं शरीर भी यथाजात नग्न है। आकाश ही जिनके वस्त्र, शरीराच्छा दक हैं। निर्मल भूमि, पाषाण—शिला तथा तृण—सस्तर मात्र ही जिनके शय्या और आसन है। वन—वृक्षोंके कोटर, तल, बनखड, पर्वत—गुफा एकान्त उपवन तथा जिन चैत्यालय ही जिनके बसनेके स्था है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहसे सर्वथा दूरवर्ती हैं आत्म—मननको न भुलाते हुए भूमि निरखकर चलते, हितमित वच बोलते, निर्दोष और निरन्तराय भोजन करते, पीछी, कमडल, पुस्त कादिको निरीक्षणकर रखते, उठाते तथा मल मूत्र देख भालक करते है। अपनी पाचों इन्द्रियोंको अपने काबूमें रख सामायिक, प्रति क्रमण, प्रत्याख्यान, वन्दना, स्तुति और कायोत्सर्ग—ऐसे छ आवश्य कोंको करते हुए एक बार बिना याचना किये खड़े २ अपने हस्तरूपी पात्रमें सदा भोजन करते है। स्नान दत—मजन आदि शृगा रके कारण विकल्पोंको त्याग जन—बस्तीसे अलग रह सदा शुद्धताके धारक आवश्यक्तानुसार स्वहस्तसे अपना केशलौच करते हुए २८ मूलगुणको परम प्रीतिसे इसी कारण पालते है कि अपने अंतरं निर्मल भावके विरोधी भावोंसे अपनी रक्षा हो।

ऐसे मूलगुण पालक निर्ग्रन्थ साधुकी वृत्ति परम आश्चर्य्यरूप है कभी वह सिद्ध लोकमें जाता और कभी ससारके आगनमें आ विराज ता है। थोड़ी २ देर बाद ही चढन उतरन हुआ करती है। कभी साधु सातवीं सीढीमें जा ध्यानस्थ हो जाता है। शक्ति हीनताके

फिर छठीमें आ विराजता है। यद्यपि आहार, विहार, निहार, करता है, तथापि अपनेको कर्ता और भोक्ता न मानता हुआ रहता है। स्वस्वभावरूप शक्तिका धारी अपने स्वाभाविक परिणामोंका ही कर्ता और भोक्ता बनता है। यही निर्लिप्त परिणाम जाति इसे निर्जरा अधिक कराती है और कर्म-बंधसे बचाती है। यदि संज्वलन कषायवश बंध होता भी है, तो वह शीघ्र छूटनेवाला निर्बंधके समान ही है। अपने शुद्ध वीतराग अभेद रत्नत्रयस्वरूप भावको ही अपने शुद्ध भावोंका साधक मानता हुआ यह साधु शरीर सम्बन्धी २२ परीषहोंको सहते हुए भी आनन्द मानता है। जनसमाजके कटुक वचन इसके आत्मीक उपयोगको भेदते नहीं। अज्ञानियों द्वारा प्रहार किये हुए शस्त्र, लोष्टादि यद्यपि इसके तनको छेदते हैं, परन्तु आत्मीक धर्मको विकारी बनाते नहीं। शिवनारीकी आशक्ततामें सर्व जगत्को भुलाए हुए लोगोंकी दृष्टिमें उन्मत्तसा दीखता हुआ परम साध्य भावका उद्यमी साधु निःशंक रह शिवनगरीकी ओर कदम बढाए चला जाता है और सदा ही परम रुचिरूप सम्यक्तके बलसे स्वरूपाचरणमें तन्मय रह निज रसका स्वाद लेता हुआ पराधीन आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

अप्रमत्तविरतकी भावना।

(२२)

ज्ञानदीपको हृदय-करमें लिये हुए स्वस्वभावानुरागी जगत्के षट्द्रव्यमय प्रपंचोंमें भ्रमण करते हुए तथा निज जातीयत्वको सर्वसे

इस गुणस्थानवर्ती आत्माको गृह फदके मोह—जालमें न फसानेवाले तथा रागकी रगतसे दूर रखनेवाले बाह्य अनेक कारण विद्यमान हैं। शरीर भी यथाजात नग्न है। आकाश ही जिनके वस्त्र, शरीराच्छादक है। निर्मल भूमि, पाषाण—शिला तथा तृण—सस्तर मात्र ही जिनके शय्या और आसन है। वन—वृक्षोंके कोटर, तल, बनखड, पर्वत—गुफा, एकान्त उपवन तथा जिन चैत्यालय ही जिनके बसनेके स्थान है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहसे सर्वथा दूरवर्ती हैं। आत्म—मननको न भुलाते हुए भूमि निरखकर चलते, हितमित वचन बोलते, निर्दोष और निरन्तराय भोजन करते, पीछी, कमडल, पुस्तकादिको निरीक्षणकर रखते, उठाते तथा मल मूत्र देख भालकर करते है। अपनी पाचों इन्द्रियोंको अपने काबूमें रख सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, वन्दना, स्तुति और कायोत्सर्ग—ऐसे छ आवश्यकोंको करते हुए एक बार बिना याचना किये खड़े २ अपने हस्तरूपी पात्रमें सदा भोजन करते हैं। स्नान दत—मजन आदि शृंगारके कारण विकल्पोंको त्याग जन—बस्तीसे अलग रह सदा शुद्धताके धारक आवश्यकानुसार स्वहस्तसे अपना केशलौंच करते हुए २८ मूलगुणको परम प्रीतिसे इसी कारण पालते है कि अपने अंतरग निर्मल भावके विरोधी भावोंसे अपनी रक्षा हो।

ऐसे मूलगुण पालक निर्ग्रन्थ साधुकी वृत्ति परम आश्चर्यरूप है। कभी वह सिद्ध लोकमें जाता और कभी ससारके आगनमें आ विराजता है। थोडी २ देर बाद ही चढन उतरन हुआ करती है। कभी साधु सातवीं सीढीमें जा ध्यानस्थ हो जाता है। शक्ति हीनतासे

अवस्थासे विपरीत है, तथापि अवश्य नि क्रियताकी साधक है। भावना क्रियारूप है। शुद्धोपयोगका परम निश्चल भाव कार्य्यरूप है। जो कोई जिसका मनन करे वह उस रूपमें क्यों नहीं हो जायगा? अवश्य ही हो जायगा। भावना स्वरूपकी कार्य्यकारी है। इस भावनामें चेज्ज्योतिका प्रकाश है। इस भावनामें आत्म-ज्ञानका विकाश है। इस भावनामें ज्ञान-सुधाका सरोवर है, जिसमें सन्तजन स्नानकर अपना विभाव मल दूर करते है। यह भावना निर्ग्रन्थ अवस्थाकी दिगम्बर मुद्राके बाह्य सहकारी कारणकी आधारिणी है। अनेक सत यथा जातरूप सेय सेय परीषह और उपसर्गको सहनकर स्वरूप समाधिमें अडिग रह स्वकल्याण करते रहे हैं। आपरूप पद आप ही है। अपनी पदवीमें रहना सहज बात हे। वास्तवमें परपदवीमें रहना कठिन है। यह आत्मा अनेक बार अनेक परपदवियोंको लेकर उनके स्थिर रखनेकी कोशिश करता रहा, परन्तु अन्तमें असफलीभूत होकर हताश ही रहा। सो सत्य ही है/ ऽकी पदवी तो चैतन्यरूपही है।

अपूर्वकरणकी बारात ।

(२४)

निज स्वरूपानन्दी आत्मा अपनी शक्तिकी व्यक्ततामें अत्यन्त लीन हो अप्रमत्त गुणस्थानमें सातिशयताको उपलब्धकर अर्थात् ससारी जीव शत्रु मोह–कर्मकी चारित्र मोहनीकी इक्कीस प्रकृतीके क्षय अथवा उपशम करनेका प्रारम्भकर प्रथम अधःकरणमें अतर्मुहूर्त ठहरकर अपने परिणामोंकी विशुद्धता करता है । वीतराग सहजानदरूप भेदज्ञानके प्रभावसे समय २ अनतगुणी विशुद्धताको प्राप्त करते हुए कर्मबधकी स्थितिको घटाता है । अपने मोक्षानदके शुभरागके कारण समय २ पुण्यकर्मके रसको अनतगुणा बढाता और असातादिक पापकर्मके रसको अनत भागरूप कम करता है । इस अध.करणके कालको व्यतीतकर ध्यान–मुद्रामें लवलीन परमात्मरस वेदी अतरात्मा शीघ्र ही अपूर्वकरणमें जाकर अष्टम गुणस्थानवर्ती कहलाता है ।

इस श्रेणीमें स्थित हो स्वरूपावलम्बी समय २ अपूर्व विशुद्धताको उसी प्रकार प्राप्त करता है, जैसे सुवर्णकी शुद्धता अग्निमें पकते हुए समय २ अधिक २ अपूर्व होती जाती है । प्रथम शुक्ल ध्यानकी श्वेततामें रगा हुआ शुक्ल लेश्या सिवाय अन्य लेश्याओंका त्यागी, श्रुतज्ञानके अर्थोंका मनन और परिवर्तन करता हुआ अपने शुद्ध स्वरूपके रसको स्वादरूप करनेसे रुकता नहीं । परम अतीन्द्रिय शुद्धात्मोत्पन्न परमानन्द सुखरसके श्रोतको उपादेय जान उसीके कारण और कार्य्यको विशेष पहिचान उसीकी शुद्धभावनामें अपना कल्याण

मान सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्गमें तल्लीनता ठान शिवनारिका आशक्त स्वरूप मदोन्मत्त आत्मा निजरगभूमिमें कल्लोल करता है। **संवर, निर्जरा,** और **मोक्ष** तत्त्वोंके बारबार रगभूमिमें आकर नृत्यकरते हुए देखकर भी यह स्वरूप-वेदी उनकी कुछ भी परवाह न कर अपने यथार्थ रूपके ही दर्शन किया करता है। इन तीनों तत्वोंमें उसको नित्य अपना रूप ही झलकता है। यद्यपि इसकी रगभूमिमें **आश्रव** और **बंधतत्व** भी अपना अत्यन्त ही मन्दरूप बनाये आते हैं और चले जाते है, परन्तु उनके पगकी अत्यन्त मन्द चाल चैतन्य राजाके चित्तको विकारी बनाती नहीं। यह चैतन्य राजा अप्रमत्तरूप रहता हुआ अपनी शिवनारिसे सम्मेलन करानेवाली अनुभूति सखीसे उसी तरह प्रेम प्रगट करता है जैसे कि, कोई पुरुष अपनी होनेवाली पत्नीके पाससे आई हुई सखीके साथ स्नेहकर उससे स्नेहपूर्वक वार्तालाप करै और उस नारिके गुण और रूपकी महिमाको श्रवण कर उस नारिमें समय २ अधिक २ स्नेहको वृद्धि करै। यह क्षपकश्रेणीमें चलनेवाला शीघ्र ही शिवमहलमें जायगा। अत इसके रूपकी मनोहारिता अवर्णनीय है। इस चैतन्य राजाकी बारात शीघ्रतासे शिव–घरको चली जा रही है। आत्माके उत्तमक्षमादि अनत गुण इस चैतन्य राजाके अनत बाराती हैं। सम्यग्दर्शनके वीतरागरूप वस्त्र पहने, सम्यग्ज्ञानके आभूषणोंसे सुशोभित, सम्यग्चारित्ररूपी गजपर आरूढ हो यह दूल्हा अपनी अद्भुत, विशाल और अपूर्व विभूतिके मदमें उन्मत्त होता हुआ, परमाल्हादित, शोकादिक नोकषाय और सज्वलन क्रोधादिक चार कषायको अपनी अपूर्व चैतन्य शक्तिसे दबाकर निर्बल बनाए हुए

समय २ बारातकी चालको बढवाता हुआ बढा चला जा रहा है। भव्य-जीव-दर्शक इस दूल्हाकी मनमोहनी बारातको देखकर अत्यन्त हुलसायमान होते हैं और अनुभूति सखीसे मिलनेकी कामना उत्पन्न करते हैं। धन्य है यह अतरात्मा! यह वीतरागी, परमयोगी योगीन्द्रोंके मनको अगोचर ऐसे परमात्मपदका दर्शन करता हुआ भवानन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद ले परम तृप्त रहता है।

अनिवृत्तिकरण–स्वयंवर।

(२९)

देखे, सुने, अनुभव किये हुए भोगोंकी इच्छारूप निदान आदि समस्त सकल्प विकल्पोंको त्यागकर निर्विकल्प–निश्चल–परमात्म तत्त्वकी एकाग्र भावनारूप ध्यानमें तल्लीन होकर यह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टी एक २ समयके ऐसे सूक्ष्म कालमें भी मोक्षमार्गके अनन्त कदमोंको तय करता हुआ अत्यन्त वेगसे चला जा रहा है। इस की एक २ समयवर्ती गतिमें भी इसको अपने आत्म–द्रव्यके अनन्त गुणोंका अनुभव अपनी भेदज्ञानरूपी विवेक परिणतिके बलसे हुआ करता है। जिस अनुभवकी तेजीको देखकर इसके अन्तरमें विराजित चैतन्य-धनके चोर यद्यपि निर्बल हो गये है, तथापि विशेष बलहीन हो या तो गुप्तरूपसे कहीं छिपके बैठ जाते है या अनुभवाग्निकी तेजीकी लपटोंसे बिलकुल मृत हो जाते है। ससारियोंको स्वस्वरूप भावनासे पराङ्मुख रखनेवाले दर्शन-मोहके बलको, न पाते हुए भी स्वद्रव्य तन्मयरूप यथाख्यात–चारित्रकी प्राप्तिमें बाधा डालने

वाले ११ कषाय और नौ नोकषाय तो विलकुल ही ठंडे पाला हो या तो मृतरूप पडे रहते अथवा सम्पूर्णतया अस्त हो जाते है। जगत्का मोटा वैरी पापका वाप लोभ कषाय अपनी कठोरताके कारण इस भव्यात्माके अंतर्मुहूर्त तक मोक्षमार्गमें चढनेके परिश्रमसे भी विलकुल उपशम या क्षयको न पाकर जगता रहता है और जब यह अपने सम्पूर्ण कषाय–भ्राताओंसे छूटकर अकेला रह जाता है तब इस भव्यात्माको सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानावरोही कर देता है । परन्तु यह सम्यग्दृष्टी इसके **अनिवृत्तकरण** नाम नवमें गुणस्थानमें ठहरकर अपना वहुतसा मार्ग तय कर लेता है।

इस अनिवृत्तकरण नाम गुणस्थानकी कुछ ऐसी महिमा है कि, जितने ध्यानी पुरुष इस श्रेणीमें मोक्ष–मार्गमें गमन करते हैं, सबकी समय २ चाल एकसी ही होती है चाहे उन सबके शरीराकार आदि संस्थानोंमें भिन्नता भी हो। आहार–निहार–विहार–त्यागी, स्व–द्रव्य-गुण–पर्य्याय-अनुरागी, स्वरसास्वादसागरमें रागी, संसारशरीरभोगोंसे अत्यन्त विरागी, परमात्मस्वरूप सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणकी एकत्वतामें पागी, क्षुत्पिपासादि द्वाविंशति परीषहों और उपसर्गोंके आक्रमणकी निःशंकाका भागी, परम ऋषि, गृहारम्भ भागिनी स्त्रीका त्यागी होकर भी एक विलक्षण नारीसे अनुरागी है । यद्यपि बाह्यमें साधु है, परन्तु अंतरंगमें असाधुसा राग रखता हुआ भी जगत्पूज्य पदकी योग्यतासे वञ्चित होता नहीं। इसका राग आकाशकी सन्ध्याकी रक्तताके सदृश लाल नहीं है किन्तु श्वेतवर्ण है । शुक्लेश्याकी प्रवलतासे रागका रंग चढता नहीं, किन्तु समय २ वह राग

अधिक २ शुक्ल होता जाता है। सो वास्तवमें यह उचित ही है, कारण कि जिस नारीसे यह आसक्त है—वह उसीको ही चाहती है जो शुक्लताके वस्त्रोंसे तन्मय हो। उस नारीको अन्य वर्णोंके वस्त्रोंसे वैराग्य है, क्योंकि वह स्वय भी शुक्लता और शुद्धताको धारती हुई अपने तनको सफेद वस्त्र और आभूषणोंसे अलकृत रखती है। सदृश्यकी सदृशमें ही प्रीति होती हे। जिस समय इस आसक्त पुरुषकी मुद्राको अपने समान अत्यन्त शुद्ध, सफेद और साफ देखती है, उसी समय यह नारी चिरस्थायी वज्रमणिमई अनत स्वाभाविक गुणरूपी दानोंसे पोयी हुई श्वेत परम शोभित और मनहरण वरमालाको उस पुरुषके गलेमें डालकर उसके साथ एकासनपर तिष्ठ जाती है। उस समयकी शोभा अवर्णनीय तथा अचिन्त्य है। धन्य है वे परम साधु जो ऐसी सुन्दर स्त्रीसे आसक्त चित्त हो उसकी भावनामें मगन हो परमाल्हादित रहते और अपनी इस प्रतीतिसे कि हम अवश्य शिव--तियाके वर होंगे, साहसके साथ उद्यम करते तथा इस उद्यममें नहीं थकते हुए स्वरूपसभाविके अपूर्व बलसे विषय सुखोंको शून्य समझ अतीन्द्रिय अविनाशी **अनुभवानंदका** स्वाद लेते हे।

सूक्ष्मसांपरायकी विजय।

(२६)

स्याद्वादरूप कर चिन्हित और सासारिक दु ख परिपाटीके सचालक मोहनीकर्म और इसके अनुयायी ३ घातिया कर्मोंका नाशकर अनतसुख, अनतज्ञान, अनंतदर्शन, अनतवीर्य्यको प्राप्त करनेवाले श्री-

अरिहतभगवान्‌रूप हिमवान् पर्वतसे विनिर्गत श्रीजिनवाणीरूपी गगामें धारावाही स्नान करके अपने आत्म-तनको निर्मल करनेवाले परम योगीश्वर शुद्धोपयोगमें तन्मय हो आनन्द भवनके छठे खन (माले) में सुशोभित रहकर ससार नेता मोहके ज्येष्ठ पुत्र अत्यन्त बलवान् लोभका सत्यानाश करनेमें उद्यमवान् हैं। पृथक्त वितर्क-विचार नामा शुक्ल ध्यानसे निकले हुए तीक्ष्ण साम्यरूप वाणोंकी वारम्बार चोटोंके खानेसे इस शत्रुका शरीर जरजरित हो गया है। मोहके ३ पुत्र क्रोध, मान, मायाका तो नाश अथवा मूर्च्छाप्राप्त होना तो पहले ही हो चुका है, अब इस दसवें गुणस्थानमें केवल सूक्ष्मलोभ ही अपने पराक्रमको जमाए खडा है। परतु ऋपीश्वरके वाणोंसे निर्बलसा रहकर एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर नाश अथवा मूर्च्छित हो जाता है। धन्य हैं ये मुनि ! धन्य है ये धीरात्मा ! ये ही सच्चे योद्धा हैं। इन्हीं वीरात्माने अपने ध्यानके परम प्रचड शस्त्रसे मोहकी सर्व सेना मूर्च्छित कर डाली है। यही परम निस्पृही साधु आत्माके वीर्य्यको परम वीर्य्य मानकर उसके बलसे अपने स्वात्मानुभवरूपी दृढ आसनको न छोडते हुए विभावोंकी वासनासे अत्यत दूर रह स्वभावसेवी हो, निर्मल अमृतका भोजन करते हुए, श्री जिनवाणीरूपी गगाका स्वच्छ नीर पीते हुए, दशलक्षणरूपी धर्मवृक्षसे टक्कर खाकर बहनेवाली शाततारूपी वायुका श्वासोश्वास लेते हुए, परमात्मा होनेकी पूर्ण रुचिमें तन्मय हो ज्ञान वैराग्यरूपी मसालोंसे अत्यत स्वादिष्ट अनुभवानदरूपी सलोनेको भक्षणकर स्वात्म तनकी परम शोभाको विस्तार प्रफुल्लित हो रहे हैं।

उपशांतमोहकी क्षणिकता।

(२७)

परम प्रतापी परमात्मा सूर्य्यके ज्ञान–तेजको सेवन करके और स्वसंवेदन ज्ञान निर्मल चन्द्रमाकी शात क्रान्तिका दर्शन कर करके तथा स्वरूपतृप्तताकारक स्वात्मजनित सुधाका भुक्तपान करके एक सम्यक्दृष्टी अतरात्मा, अपने आत्मतनको दृढ बनाए हुए, वीतराग विज्ञानताके तीक्ष्ण भालेके अभ्याससे अपनेको मदिरा पिलाकर बेसुध करनेवाले मोह शत्रुके पुत्र पौत्र २८ कषायोंके आक्रमणोंको टालते हुए और उन सबको इधर उधर मूर्छित करते हुए तथा मोह शत्रुको स्वपुत्रोंकी मूर्च्छाके इलाजमें छोड़ आनद भवनके सातवें खनमें चढ़ विश्राम लेता है। स्वरूप मननमें तन्मयता प्राप्तकर और अपने स्वभावका निर्मल अवलोकन कर यह स्वगुणानदी यथाख्यात चारित्रकी पदवाको भोगता हुआ उपशांत मोह गुणस्थानी कहला कर मुक्ति कन्याके बरनेका उत्साह करता हुआ उसके रूपकी चिन्तामें उन्मग्न हो ज्योंही स्थिर होता है त्योंही एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर ही मूर्च्छा प्राप्त मोह शत्रुके पुत्रोंमेंका बड पुत्र संज्वलन लोभ मूर्च्छाको त्याग अत्यन्त वेगसे झपटता है और अपनी मोह–पासीमें उसका गला फसा सातवें खनसे छठे खनमें ले आता है। इतनेमें अन्य पुत्रपौत्र भी जागृत होते हैं और इसके भालेकी चोटोंसे जर्जरित होकर क्रोधमें भरे हुए सारे ही धीरे धीरे इसको गिराते हुए आनन्द भवनके नीचे कर देते है। इतनेमें मिथ्यात्वनामा प्रबल

बैरी आकर इसको आपात्ति महलमें ले आकर पटक देता है। सच है अग्निको और शत्रुको दबाकर रखनेसे वे अपना नाश करते ही है। इनका तो सर्वथा क्षय ही बाधाहारी है। ग्यारहवें रुद्र महादेवको इसी प्रकार दगा खाकर आनन्दभवनके सप्तम खनतक चढकर गिर ससार परिपाटीमें उलझकर अतीन्द्रिय आनन्दसे इद्रियोंके क्षणिक सुखमें लुब्धता कर जगत्का अपमान और हास्य सहना पडा। धन्य हैं वे परम साधु, जो इस तरहके अपमानको बचाकर अपने बलसे फिर भी चढते हैं और अब अपने भेद–ज्ञानकी तीक्ष्ण खड्गसे मोहके क्षयको उद्यमी होते है। जिनको मुक्तिकन्याको बरकर अनन्तकाल तक सुधा–समुद्रमें ही लुप्त रहना है, वे तो हजार उपाय करके भी अपनी परिणतिको पुत्र, कलत्र, मित्र व शरीर सबसे बचा आत्माको परमात्मारूप देखनेमें ही लगाकर सासारिक सुखोंसे विपरीत अनुभवानन्दका स्वाद लेते है।

क्षीणमोही–अर्जुनका विश्राम।

(२८)

अन्ध धृतराष्ट्र–मोहके पुत्रोंका समररगमें विध्वस कर चैतन्य–अर्जुन अपने ध्यान–बाणकी प्रशसा करता हुआ उसी ध्यान–बाणकी निराली एक तानमें तन्मय हो एकत्व–वितर्क–विचार नामा शुक्लध्यानको पाकर गत बने हुए बनावोंसे उपयोगको हटाकर शिव–महलके निर्विघ्न आठवें खनमें जा विश्राम लेता है। वीतरागताकी मनोहर

सुन्दरता उसके मुखकमलको प्रफुल्लित बना रही है। इसके मोहग्ग अमित तेजके प्रभावसे जगत्के सम्पूर्ण सुगुण इसके आश्रय लेनेको परम उत्सुक हुए चले आ रहे हैं। त्रिलोकराज्यकी हस्तनापुर राजधानीके कपाट अर्थात् आवरण शीघ्र ही दूर होनेवाले हैं। इस महात्माकी शुक्लध्यानरूप बिजली अपने एक अतर्मुहूर्त मात्रके परिश्रमसे ही सम्पूर्ण स्वात्मसुखविरोधकोंको विध्वस कर देगी। यह महात्मा अपनी प्राणवल्लभा सुमतिरानी द्रौपदी सतीके अद्भुत शीलको निष्कलक पाकर उससे परम सत्य प्रीति विस्तारता है और उसको बारबार धन्यवाद देता है कि, उसने इसके कुलकी लाजको, अनेक कुमति कुलटाके शत्रुओंद्वारा विघ्न आनेपर भी स्थिर रक्खा है। यह महात्मा अब ससार परिपाटी मोहकी फासीमें अनत काल तक भी फसनेका नहीं है। अपने महान् परिश्रमके फलको पाकर परम सतुष्ट, परम कृतकृत्य, परम निष्कषायी, योगीश्वरोंमें श्रेष्ठ, **क्षीणमोहगुणस्थान**–धारी, स्वात्माराम–विहारी, परम अविकारी, निर्विकल्पलता–मडप–सचारी, परमस्वादिष्ट, आत्माधीन सुखभोग-अनिवारी, अपनी अपार महिमाको लिये सम्यग्ज्ञानकी मनोहर सेज पर लेटा हुआ यथाख्यात चारित्रकी अत्यन्त सूक्ष्म चादरको ओटे हुए, पचेन्द्रिय अतीत अतीन्द्रिय–रसके विलाससे पुष्टता धारता हुआ यह ऋषि उत्तम सम्पूर्ण भवबीज आकुलतारूप ससृति आनंदोंसे अतीत **अनुभवानंदका** स्वाद लेता है।

सत्यार्थ अरहंतदेव।

(२९)

स्वसमय निर्विकल्प समाधिरूप कारण समयसारसे कार्य्य समयसारकी प्राप्ति कर अपने आत्मीक रसानुभवके विरोधी चार घातिया-कर्मोंके नाशसे पूर्ण प्रकाशका लाभ कर आत्म–सूर्य स्वतेजके प्रभाव और आकर्षणसे त्रिलोकके भव्य प्राणियोंके मुद्रित हृदय–कमलको प्रफुल्लित करता हुआ उनको अपना निकटवर्ती बनाता है । शत इन्द्र परमाल्हादसे इस अमिततेज भानुकी उष्णतासे पोषित होनेके लिये अपने परिवार सहित आकर सूर्य्यमडल–समवशरणकी भूमिमें स्थित हो दिव्य–वचन किरणावलियोंका लाभ ले अपने अत करणको पुष्ट करते हैं । इस तेरहवें गुणस्थानधारी जिनेन्द्र आत्माकी महिमा वचन अगोचर अगाध है । जिस निजात्म देवको यह बारहवें गुण-स्थान तक परोक्ष दृष्टिसे देखता था, उसी देवाधिदेवको यह प्रभु अब साक्षात् अवलोकन कर प्रत्यक्षीभूत करता है । अहा ! उस व्यक्तिको कितना आनन्द होगा जबकि उसकी वह प्राण–प्रिया जिसको प्रत्यक्ष देखनेकी कामना करता हुआ भी बहुत कालसे उसका परोक्ष ही विचार करता था यकायक उसके सन्मुख आकर खडी हो गई हो । इस त्रिलोकनाथके सुखकी महिमा अपार है । शिवकन्यकाके मनोहर महलके नर्वे खनमें यह पहुच गया है । मात्र एक खनको तय करके ही यह शिव–कन्यासे परम संभोगके आनदको अनत काल तक एक ही स्थानमें विराजित रहता हुआ प्राप्त करेगा ।

इस समम परमौदारिक शरीररूप घरमें अपनेको व्याप्त रख यह चिदानन्द प्रभु भव्यजीवोंके पुण्य–प्रभावसे विना अपनी इच्छाके ही आत्मीक धर्मश्रौतकी निर्मल अमृतरूप वृष्टिको करके जीवोंके अनादि अज्ञानतमको विध्वस करता है। इस समय इस प्रभुके अलौकिक अतिशयोंका समागम है। धन्य है यह आत्मानुभव, धन्य है यह परम शुक्ल ध्यान, धन्य है यह उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधि जिसके प्रभावसे कोसों तकके जीवोंके परिणामोंमें द्वेपकी अग्नि शांत होगई है। प्राकृतिक वैरी भी परस्पर मित्रताका व्यवहार करते है। वनोंमें शुष्क और फलरहित वृक्ष भी इस समय हरे भरे और फूले फले विकसित प्रसन्नरूप दृष्टिगोचर हो रहे है। कोसों तकके जीवोंकी दरिद्रता प्रयाण कर गई है। इस आत्मप्रभुकी महिमा उन्हींके ज्ञानगोचर है, जो स्वय इस प्रभुसे अपनी अतरग लौ लगाकर पचेन्द्रिय ग्रामोंको प्रलय कर समाधिके सागरमें निमग्न हो जाते है। यह ज्ञानसूर्य्य परमतेजसे लोकालोकके ज्ञानसे परिपूर्ण किसी भी जातिकी अज्ञानतासे रहित है। सच है जहा पूर्ण प्रकाश है वहा अधकारका अश नहीं। भव्यात्मा ऐसे ही आत्मदेवको सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी कहकर अपना आप्त अर्थात् पूजने योग्य देव मानते हैं तथा इसके सिवाय अन्य समस्त ससारमें रागीदेवोंको मोक्ष–मार्गमें सहाई नहीं जानते हैं। स्वात्मानुभवके उत्कृष्ट फलके भोक्ता श्रीअरहतदेव परमात्मा जीवन्मुक्त अवस्थामें रहकर अनेकोंको कल्याण–पथ प्रदर्शित करते हुए अपनी प्रिय सखी अनुभूतिसे वार्तालाप करते हुए अनुपम निर्विकार स्वाधीन अनुभवानंदको उपलब्ध करते हुए परमाल्हादित हो रहे हैं।

अयोग केवली ।

(३०)

शिव–महलके दशवें खनमें विराजित चतुर्दश गुणस्थानवर्ती अ इ उ ऋ ऌ–ऐसे पाच लघु अक्षर उच्चारण मात्र समय भर ठहर कर तृतीय और चतुर्थ शुक्ल ध्यानके बलमें प्रथम ७२ और फिर १३ कर्म प्रकृतियोंको अपने शुद्ध आत्मस्वरूपसे विना किसी प्रयत्नके दूर करता हुआ यह शुद्धात्मा समस्त मलसे रहित हो निर्मल दर्पणसम परम सुन्दर होकर शिव–महलके टावरमें जाता है और शिवनारीसे मिलकर अकथनीय आनन्दको प्राप्त करता है। जिसके स्नेहके वशमें हो समस्त विषय सामग्रीको त्यागकर यह मुनि वन और पर्वतकी गुफाओंमें वास करता था और हर समय वही रटना और वही लय लगा रक्खी थी कि किसी भी तरहसे हो मुझे परम तृप्तताकारिणी, स्वाधीन सुख–विस्तारिणी, अनन्तकाल तक भी सयोगको नहीं छोडनेवाली शिव–तियासे भेंट हो। आज उसी अद्भुत सूरत–धारिणी शिव–तियाको प्राप्तकर इस सिद्ध परमात्माको जो स्वजन्य सुखका अनुभव हो रहा, है उसकी तुलना करनेके लिये जगतमें कोई पदार्थ नहीं है । तीन लोककी प्रभुताको रखता हुआ परमात्मा सर्व सकल्प विकल्पोंसे रहित हो निर्विकल्प प्रमाण, नय, निक्षेपके व्यवहारिक कथनोंसे अतीत शुद्ध सुवर्णके समान परम शुद्ध और निर्द्वन्द्व निराबाध हो जाता है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्यमई मुख्य गुणोंका आधाररूप परम सूक्ष्म रसमई, स्वअवगाहना सयुक्त, परको अवगाहना देनेको समर्थ, अगुरुलघु गुणसे व्याप्त, परम अव्याबाधमई रह

अनन्त काल तक स्वभावजन्य परम तृप्तताका सभोग करता है। वह न तो पर वस्तुओंका कर्त्ता है, न जगत्का न्यायकर्त्ता है और न अपने शुद्ध प्रदेशोंसे लोक-व्यापक है। वह पवित्र आत्मा कर्मोंजनमे रहित हो अपनी शुद्ध परणति रानीसे ऐसा तन्मय हो जाता है कि द्वित्वका नाम तक भी नहीं रहता। परम मोक्ष पुरुषार्थका लाभका अत्यन्त कृतकृत्य, कृतार्थ और स्वरस-मग्न हो जाता है। स्व सम यरूप कार्य समयसारको प्राप्तकर अजर अमर हो पच परावर्तनरूप ससारके ससरणसे रहित हो जाता है। परम ब्राह्मण ब्रह्मचारी हं कर भी शिव-नारीको बर कर गृहस्थीका सा चारित्र करता है, षट् गुणी हानि वृद्धिके व्यापारको करके निरन्तर परम अमृत-रसमई धन का लाभ करता है और उस धनसे अपनेको और अपनेसे अप्रथ, क्भूत शिव-नारिको तृप्तता देनेवाले और परम आल्हादित करनेवाले स्वरूपसभोगकी सामग्री उपलब्धकर निराकुल रहता है तथा शात कोमल समताकी सेज्यापर शुद्ध गुणोंकी चादरको बिछाये व शुद्ध परिणामोंकी सौडको ओढे अपनी निजरूपमई शिव-तियाके संग कल्लोल करता है और जगत्के क्षणिक आनन्दोंसे अतीत परम अनुभवानंदका अनुभव करते हुए अपनेको अपनासा सर्वथा शुद्ध देखता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मचारीकी दशामें रह स्वाधीन आनंदका विलासी बन परमोत्साहित और परम गुणानदी रहता है।

शिव-तिया-संगम ।

(३१)

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल—इन पाच द्रव्योंमें छिपा और उनसे अलग यह आत्मा अपनी परमात्म—शक्तिको पूर्ण मान कर और अपने सहाई अपने आश्रयमें स्थित सपूर्ण गुणरूप सेवकोंको साथ लिये हुए अपने सत्ता मैदानमें उपस्थित हो अपनी ही बेखबरीसे उसमें प्रवेश किये हुए मोह—शत्रु और उसकी सेनाको भगानेके लिये उद्यमशील हो गया है। मोह—शत्रु कायर है, यह आत्मा वर वीर है, मोह शत्रु अज्ञानी है, यह आत्मा ज्ञाता दृष्टा है, मोह—शत्रु अधीर है, यह आत्मा धीरवीर है, मोह शत्रु अतृप्त है, यह आत्मा अत्यन्त तृप्त सतोषित है, मोह—शत्रु आकुलताकारक है, आत्मा निराकुलताका ही साधक है, मोह—शत्रु नित्य बलसे हीन है, आत्मा नित्य बलवान् और वीर्यवान् है, मोह—शत्रु मिथ्यारूप है, आत्मा यथार्थ सम्यक्ज्ञान है, मोह—शत्रु बाधा प्राप्त है, आत्मा अव्याबाध और निर्विघ्न है, मोह—शत्रु अपनी रगतको बाह्य दिखाकर स्थूलता प्रगट करनेवाला है, आत्मा अत्यन्त गुप्त मन, इन्द्रियोंसे अतीत रह सूक्ष्मताका सभोगी है। इस प्रकार इन दोनोंके बलोंमें अत्यन्त फेर है। यही कारण है कि सत्ता—मैदानमें आत्माकी सर्वाङ्ग सुन्दर शात मुद्रा देखकर मोह अपना मुँह छिपाये रहता है। उसका सारा तन भयसे कापा करता है और गुप्त रहकर ही अपनी ओरके योद्धाओंको आत्म—वीरका मुकाबला करनेको भेजता

है । परन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ—इन ४ सुभटोंमेंसे व हास्यादि नोकपाय—वीरोंमेंसे जो कोई आत्म—वीरके सन्मुख आता है—वहीं इस आत्माकी अभेद रत्नत्रयरूप परम सामायक भावकी फुकार खाते ही डर करके भाग जाता है । यह आत्मवीर सत्ता मैदानमें बहुत ही चौकन्ना होकर खडा रहता है । जो कोई इधर उधरसे निकट भी जाता है, तो उसे ही सम्यग्ज्ञानकी खडगसे खडित करता है तथा जो कोई विषय—इच्छारूपी डायन आत्मापर अपना दाव फेंकती यह धीरवीर उसी समय वैराग्यकी ढालसे उस चोटको पीछे पटक देता है । मन, वचन, काय त्रिगुप्तिरूप सवरके अश्वपर सवार हो मैदानमें खडा २ यह आत्मा किसी भी कर्म शत्रुको अपने पास ठहरने नहीं देता, जो कोई आते है वे यों ही मुह लेकर चले जाते है ।अपने सत्ता—मैदानमें छिपे छिपाये वैरियोंको दग्ध करनेके लिये ऐसे अद्भुत निर्मल ध्यानकी लग्नि लगा देता है, कि जिसकी लपक अपने आत्मा और उसके अनत गुणोंको दग्ध करती नहीं, किन्तु उस मैदानकी अनेक झाडियोंमें छिपे छिपाये शत्रुओंको जला डाल्नी है । इस तरह मैदानसे परकी वासना भी न रख—यह आत्म वीर अपने तेज अत्यन्त तीव्रगामी सवर अश्वपर चढे हुए अपनी प्रिया मगलमती मुक्त—तियाके द्वारपर पहुचता है और चट उस अश्वसे उतर शिवनारीसे मिल्ता है और परस्पर ज्ञानानदकी गोष्ठी कर सम्पूर्ण विकल्पोंसे अतीत सहज स्वाभाविक अनुभवानन्दका स्वाद लेता है ।

मेरा भाग्योदय।

(३२)

हा! आज मै बडे आश्चर्य्यमें हू, वनों और पर्वतोंकी गुफाओंमें रहते हुए तथा शिलाओंमें तप करते हुए मुझको कितने वर्ष बीत गये, परन्तु अभीतक कष्ट ही कष्ट मालूम पडा। दूसरोंको तो अनेक ऋद्धि सिद्ध हो जाती हैं। मैं अबतक क्यों रीता रहा? अहा! सच है, जिस स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा यह जीव सर्व जगत्को अपनेसे पृथक् करता है, जिस सम्यग्ज्ञानके द्वारा यह जीव परस्वरूपसे अपने भावको हटाता है, जिस आत्मज्ञानके द्वारा यह जीव स्वस्वरूपावलम्बी होता है, जिस आत्मानुभवके द्वारा यह जीव स्वाधीन, सहज स्वाभाविक, निर्मल और बधरहित अमृतमय सुखका स्वाद लेता है तथा जिस स्वभाव परिणतिके द्वारा यह जीव इद्रादिक और चक्रवर्तियोंकी सम्पदा और इन्द्री—जनित भोगोंको भी अपने मननके विरोधी और बधकारक समझता है, ऐसा आत्मज्ञान रूपी—दीपक अबतक मेरे हृदय—मदिरमें नहीं जागा। मुझे लौकिक ऋद्धियोंसे क्या मतलब? वे होवें या न होवें, क्योंकि जिन आत्मज्ञानी योगियोंको यह ऋद्धिया हो भी जाती है, तौ भी वे इनकी कुछ भी पर्वाह नहीं करते और न इनसे कोई काम लेना चाहते हैं। सच है, यह मेरी बडी मूर्खता है, जो मै ऋद्धियोंकी अभिलाषा करके गृहस्थावस्था त्यागकर भी गृहस्थके समान ऋद्धिधारी धनवान् होना चाहता हू। यह क्षणिक विभूति मेरे आत्मावलोकनमे विलक्षण है। मुझे अब सचेत होना चाहिये और शीघ्र ही इस जगत्की सपदा और इन्द्रि-

योंकी आशा व अपनी असत् मान्यताकी तृष्णाको हटाना चाहिये और निर्विकल्प समाधिके आगनमें जाकर कल्लोल करना चाहिये। उस निर्मल आगनमें नाना प्रकार नयोंके विकल्परूप—काटे व कंकड़ नहीं है, नयोंकी पक्षका अभाव है और न वहा गुणस्थानरूप उंच नीचपना है। स्वच्छ निर्मल आगनमें ही रमण करना मेरा हित है। उस आगनमें जाते ही स्वानुभूति मेरी प्रिया मेरे निकट आ जाती है, जिसकी सगतिमें अनेक प्रकार सभाषण और परस्पर प्रीतिका प्रादुर्भाव अद्भुत आनन्दका दायक है। उस परम सामायिकमें मेरा आत्म-शरीर सम्पूर्ण ज्ञान—ज्योतिका पुज—रूप ही हुआ मानों झकलता है। यद्यपि ज्ञेय पदार्थ झलकते है, परन्तु भिन्न २ ही रहते हैं और मै भिन्न २ ही रहता हू, मेरा स्वरूप वास्तवमें अन्याबाध है। यदि त्रिलोकके तीव्र और मन्द शब्द, तीव्र और मन्द गन्ध, तीव्र और मन्द रस, तीव्र और मन्द स्पर्श, तथा भारी व हल्के पुद्गल स्कन्ध सर्व ही मेरे आगनमें अपने स्वाभाविक वेगको लिये हुए चले आवें तथापि मेरे आगनमें कोई धक्का नहीं लगता, कोई मलीनता नहीं आती, कोई उद्वेग नहीं खडा होता। यह मेरी अनुभूतिका ही प्रताप है कि जिससे मुझे कोई लाख बाधा देनेको आवे, परन्तु मै स्वभाव दृढ रहकर निजानन्दका स्वाद लेता हू। असलमें मेरी ज्ञान दृष्टी अब खुली है। अब मेरे भाग्यका उदय आया, अब मेरे अतरंगकी सम्पूर्ण व्यथा दूर हुई। अहा! अब मै अवश्य ही भवकारण दुखरूप आनन्दोंसे अतीत अनुभवानंदका स्वाद ले सदा स्वरूप-उन्मत्त रहूगा।

———

वीर पुत्र।

(३३)

ज्ञानामृतका पीनेवाला भव्यात्मा सम्पूर्ण विकारोंसे रहित स्वाधीन निजमुखका अवलोकन अपने ज्ञान दर्पणमें प्राप्तकर अत्यन्त सुख अवस्थाको प्राप्त हो रहा है। यह ज्ञानी असख्यात लोकप्रमाण कषाय परिणामोंके रागसे विरोध-रूप होकर वैराग खड्गसे हरएक मोह-वैरीके प्यादेका विध्वस कर रहा है और वीतरागताके शात मनोहर जलमें नहा नहा कर मोह-युद्धके खेदको मिटा रहा है । यह तत्वज्ञानी जब २ किसी भी कषाय वैरीको ठडा करता है तब तब जयके आनन्दमें भरकर त्रिलोक आगनमें अपनी भेदज्ञान परिणतिको नृत्य कराकर और उसके अद्भुत चित्रादको श्रवणकर परम आल्हादित होता है। यह स्वरूप अनुभवानन्दी दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी सम्यक्ता और एकताका एक ही काल अनुभव कर स्वरूप-उन्मत्त हो रहा है तथा इस विकट आत्मज्ञान-रूपी मदमें झूलता हुआ ज्ञेयरूप परवस्तुओंके आने न आने, दिखने न दिखनेकी कुछ भी परवाह नहीं करता है। इस परमात्मरस वेदीकी वेदन शक्ति परोक्ष श्रुतज्ञानके द्वारा ही शुद्धात्म-रसके स्वादमें मुग्ध हो गई है और यह इस स्वादको लेते हुए अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञानकी कुछ भी इच्छा नहीं करता और न केवलज्ञानको अपनेसे भिन्न जानता है। यह तो अपने विद्यमान श्रुतज्ञानको ही केवलज्ञान मानता है। क्योंकि एक परोक्षताका पर्दा पडा है। उसको उठाते ही वही

श्रुतज्ञान केवलज्ञान कहलाने लगता है। चीज एक ही है। गुप्त और प्रगटकी अपेक्षा नाम भेद हैं। मैं शुद्ध स्वरूप–रूप सिद्धसम अविनाशी स्वभावानन्दी और अनाकुल हू, यही भावना शुद्ध रूपकी साधक है। अतरगकी दृढ भावना भाव्य वस्तुको अवश्य प्राप्त करानेवाली होती है। ज्यों २ भावना दृढ, त्यों २ अंतरंग रुचि दृढ, ज्यों २ स्वसंवेदन रसका अनुभव ताजा, त्यों २ स्वाधीन आनन्दका विकाश, यह सब प्रकाश आत्म ज्ञानका है। जिनके अन्तरगमें आत्मज्ञानरूपी स्नेह है, उनके अतरगमें विकारमई राग और द्वेष जल ठहर नहीं सकता। स्वभाव तन्मयताकी अपूर्वता परम आनन्दकी साधक है। जिन भव्यजीवोंको स्ववस्तुकी चाह है, उनको परवस्तुकी चाह नहीं हो सकती। जहा स्वस्त्रीसे अन्त करणसे सभोग है, वहा परस्त्रीका सभोग नहीं हो सकता। जो परवस्तुकी चाह करते नहीं, जो परस्त्रीसभोगकी इच्छा करते नहीं, वे निरपराधी है, उनको कोई कर्म–कालिमा–रूपी बधन जकड़ नहीं सकता। वे शरीरमें रहते हुए भी सदा मुक्त हैं। उनके उपयोगको दवाने वाला कोई नहीं। वे अपने ही उपयोगमें सर्वको धरकर उनके भेद करके वस्तु–स्वरूपके विचारसे उनको आप दबा लेते हैं, अपने उपयोगको दबने देते नहीं। ऐसे ही वीर पुत्र श्री महावीर स्वामीके सच्चे पुत्र रह कर अपने वीरत्व और धैर्य्यसे सम्पूर्ण अंतरग और बाह्य शत्रुओंसे निर्भय हो सर्व भयसहित आनन्दाभासोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेते है। धन्य है! यह अतरात्मा, जो आज परम वीरताको धारकर तथा स्वभाव तन्मयतामें लीनता

प्राप्तकर चिन्मय ज्योतिके दर्शनमें लुभाया हुआ अनुभवानन्दका रस लेकर सतोषित हो अपनेको सुखी अनुभव कर रहा है।

आत्मीक रेलगाड़ी।

(३४)

परमात्म–तत्त्व–वेदी स्वपर वस्तुका वेत्ता रहकर आत्मानदमें लीन रहता है। सम्यग्दृष्टी जीव अपने आत्म–ज्ञानके बलसे इस विकल्पको भी अपनेमें नहीं होने देता है कि मैं सुखी हू कि दुखी हू। उसका सत्स्वभाव उसके अनुभव गोचर है। सदा अस्तित्वरूप रहनेवाला जीवका जीवत्वमात्र उसकी दृष्टीके सन्मुख हे। निरालम्ब पदार्थका आलम्बन ही इस निरालम्बके लिये स्वावलम्बन है। यह पराश्रित स्वावलम्बन निश्चय निरालम्बनका साधन है। जिस साधनके साधक साधु समाधिमें समाधान रहकर सत्स्वरूपकी सत्ता और उसकी साम्यताका स्वाद लेते हैं, उनकी सम्यक्दृष्टीमें त्रिलोक एक नाटकशाला है, जिसमें षट् द्रव्योंका नाट्य हो रहा है। इस नाट्यका ज्ञाता दृष्टा नाट्यको देखते हुए भी अपनी ज्ञान–दृष्टिमें सत् चित् आनन्दमय परमात्माकी छविको पुन पुन अवलोकन कर सतुष्ट और प्रसन्न रहता है। जिसको अनेक पर्याय अपने फदमें फसाती नहीं, जिसको कोई विकल्परूप लता वेढती नहीं, जिसको कोई कर्मरूप वैरी भुला सक्ता नहीं–ऐसा प्रवीण चतुर सम्यक्दृष्टात्मा अपनी निधिका स्वामी वन उसके मानमें मगन हो रहा है। जिसकी लगन निरन्तर निज निर्भय निष्कंटक निधिपर हैं, परनिधिपर कदापि नहीं

है। वास्तवमें जो अपने ही धनमें सतुष्ट रहे और उसीसे स्वयोग्य
व्यापार करे, वह एक निरपराधी साहूकार है। इसके विरुद्ध जो
परनिधिको व उसके अशमात्रको ग्रहण करे, वह सापराधी और चोर
है। जो निरपराधी वीतरागी है, वह कर्मबधको प्राप्त न होकर कर्म
भी चोरकी तरह दुखी नहीं होता, किन्तु अनादि कालसे चोरी
हुई वस्तुओंको अपने पाससे इस कारण फेंकता जाता है कि उनका
सम्बन्ध ही उस ज्ञानीको चोर और परवस्तु ग्राहकके अपयश
रखनेवाला है। वह सम्यग्ज्ञानी अपनी भाव परिणति–रूपी रेल
आत्म–अनुभव–रूपी ऐन्जिनको जोडे हुए चला रहा है और अ
उसमें बैठा हुआ शिव–नगरको चला जा रहा है। मार्गमें शास्त्र
स्वाध्याय–रूपी जल उस आत्मानुभवरूपी ऐन्जिनको पिलाता जाता
जिससे वह अपनी तेजीमें शिथिल न हो। वैराग्यरूपी कोयला
एन्जिनमें ध्यान–अग्निरूप हो रहा है। यह रेल शिव–नगरके ऐसे ल
सफरमें मार्गमें देवगति व अन्य मनुष्यगति–रूपी स्टेशनोंपर ठहर
जाती हैं। कहीं अधिक, कहीं कम विश्राम लेती है। जब जब ऐन्जि
नमें शिथिलता आती है, दृढ किया जाता है। यह रेलमें बैठा हुआ
भावावलम्बी जीव विश्रान्तिके स्थानमें इस रेलसे उतरकर विश्राम
स्थानमें बैठ क्षुधा तृषादिकी वेदना मेटता है, परन्तु शीघ्र शिव–नग
रमें पहुचनेके उत्साहसे इस वेदनाको और इसके उपायको भी
एक सकटरूप ही समझता है। धन्य है! यह शिवतिय–आसक्त
सम्यग्दृष्टी। यह अपने स्वरूपके स्वादको लेकर उन्मत्त हो रहा है
और भववासी आनन्दोंसे अतीत अनुभवानन्दका रस ले तृप्त हो
रहा है।

तत्त्वरूपी अंजन ।

(३९)

आत्माराम अभिराम केवलधाम स्वकल्याणके सन्मुख हो सर्व अपने उन वैरियोंसे मुह मोड रहा है, जिनको कि थोडी देर पहले अपना मित्र समझ रहा था । अनादिकी भूल मिटाके अब यह स्वपथका अवलम्बी हुआ है । इसने अपनी सब उन्मत्तता बहा डाली है तथा शम दम और यमसे परम शात, विवेकी और स्वआचारवान् बन गया है । जिनेन्द्र कथित स्याद्वादरूप परमागम द्वारा प्रदर्शित तत्त्वरूपी अजनको लगाकर अब इसने अपनी मिथ्यादृष्टिको सम्यग्दृष्टि कर दिया है । मोक्ष–मार्गमें साधक और बाधक ऐसे दोनों प्रकारके तत्त्वोंका सत्य स्वरूप इसने पहिचान लिया है । इसके अंतरगमें भवरुचि टूट गई, इन्द्रिय–सुखोंकी तृष्णा बिघट गई तथा कषायोंकी प्रसरता सिमट गई है । यह अब अपने रूपको देख चुका है । इसने अपनी गुप्त निधिको पहिचान लिया है । अब यह सर्व परका कर्जा चुकाकार अपने ही मूल धनसे, अपनी ही नगरीमें, अपनी ही निधिके द्वारा व्यापार करना चाहता है । मोक्ष–सुखका पिपासु हो, अतीन्द्रिय ग्राममें पहुचना ही इसका मन्तव्य है । वीतरागताका सुहावना भोजन ही इसको प्रिय है । यह आत्माराम अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर देखता २ अघाता नहीं है । दृष्टि निर्बल है, इससे बहुत देर तक एकसा देख नहीं सकता । यद्यपि ठहर २ कर पुन २ अवलोकन करता है तथापि, एकरूप अवस्थाको न होनेसे किंचित् आकुलित रहता हे । परन्तु इसका बारम्बार देखना इसकी ज्योतिकी शक्तिको

बढाता है। यहा तक कि कालान्तरमें इसकी ज्योति उस दृश्यमें ऐसी स्थिर हो जाती है कि यह फिर उस स्थानसे पीछे गिरनेका नहीं है। जब यह आत्माराम अपनी दृढ शक्तिको पकड लेगा, उस समय यह मोहादि कर्म शत्रुओंके आक्रमणोंकी कुछ परवाह नहीं करेगा, और सर्वको भगाता हुआ स्वस्थानपर ध्यानके विमानमें बैठा हुआ सीधा चला जावेगा और सिद्ध–शिलामें लोकाग्र तिष्ठकर अनत कालके लिये सुखी हो जावेगा। उसके परिवारके अनत गुण उसका साथ कभी छोडेंगे नहीं। वह वीर–आत्मा स्वाभाविक मनोज्ञताको प्राप्तकर शिव–नारीको मोहित करके अपनेमें तन्मई कर लेवेगा और उसके सहज विलासमें आनन्दित हो स्वानुभवके परमामृतको परम सतुष्ट हो आस्वादन करेगा।

भेदज्ञान–साबुन।

(३६)

समस्त सकल्प विकल्पोंको दूरकर निर्विकल्प दशामें रह, जो कोई स्वानुभूति रानीके मोहमें तल्लीन हो अपने आपको इन्द्रिय–विषय ग्रामोंसे हटाकर अतीन्द्रिय परम मनोहर नगरमें विराजित करता है–वही पुरुष वीरोंका वीर, अतिवीर, महावीर है। यह उसीकी शक्तिमें है, जो अष्ट महाकर्म शत्रुओंका विजय करे तथा उस कामदेवका सत्यानाश कर डाले कि जिसके वशमें पडे हुए ससारी जीव आकुल व्याकुल रहते है और अपने निश्चय ब्रह्म–स्वरूपमें चर्य्या नहीं कर सके। स्वस्वरुप, उसके अनतगुण तथा उसकी अनतपर्याय एक ही

गल जिस परमात्माकी ज्ञान-दृष्टिमें शोभायमान होते है उसी परमात्माके परम मनोहर मगल आननका जो अवलोकन कर तृप्त रहते हैं, वे ही सुधा-समूह चद्रमाकी अनुपम कलाको पाकर स्वामृतका पान करते हैं। ऐसे सुखसमुद्र चिन्मय परम तपस्वी निज निर्विकल्प समाधिमें जब आरोहण करते है, तब तीन लोकको अपनेसे पृथक् देख और स्वय एकाकी अनुभवकर स्वय ही परमात्मा है-ऐसा सम्यक् विचार करते है। यह विचार उनको ससार काननसे हटा हरे भरे निजाल्हादरूप उपवनमें ले जाता है। जहा अनन्तगुण रूप वृक्षोंको देखता हुआ उनकी वैराग्य-रूप सुगन्धको पाकर अतिशय तृप्त होता हुआ सम्यक् दृगात्मा समरस-सरोवरमें निमज्जन होता है और चिर विराजित कर्म कालिमाको भेद ज्ञान साबुनसे धोता हुआ अपने अतर्मुख कमलको प्रफुल्लित करता है तथा परम पवित्रता प्राप्तकर ऐसा आल्हाद करता है कि मानो मैं स्वयसिद्ध, निरजन, निराकार, ज्ञानपुज और सुख-धाराधर हू। यह आल्हाद इस तत्त्वज्ञानीके आत्म-तनको पुष्टि देता है और यह जीव अपने बहुतसे रोग हटाकर आत्म-पुष्ट हो अपने रागादि शत्रुओंसे लडता है और प्रत्येक चोटमें उनकी शक्तिको हीनकर विजयानन्दरूप अनुभवानदका स्वाद लेता है।

आत्मीक हलवाई।

(३७)

निजस्वरूपानन्दी, परम स्वभाव ग्राहक, भवविलास हेय अभ्यासी, सिद्धसुख-दर्शनाकाक्षी आज सम्पूर्ण भव-नारियोंसे उदास हो शिव-

नारीके मोहमें मोहित हो गया है । वडे आश्चर्यकी बात है कि इस
दशा बहुत ही विलक्षणसी हो रही है। स्वात्ममनन-रसकी बनी अत्यं
तीव्र मदिराको पीकर अपने अतरग आपेमें बेसुद हो रहा है। जगत
ससारी नरनारी जिसकी चेष्टा देख हँसते हैं और उसे अपने का
उत्सुक नहीं देख घृणा भी करते है, परन्तु उस ज्ञान-संतोषी
इस बातकी कुछ भी परवाह नहीं है। यह निज आत्मीक व्यापा
चतुर हो, अपने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका अवलम्बन कर, अप
शुद्ध भावनाकी भट्टी जला, ज्ञान-वैराग्य-रसको पका पकाकर स्वात्
मय मनोहर व्यञ्जन तय्यार कर करके स्वय भी खाकर अप
अनादिकी क्षुधा-वेदना मिटाता है और अन्योंको भी वह सु
सलोने शब्दरूपी दोनोंमें धर कर देता है और उसके बदलेमें प
वाले भी अपनी भाव-भक्तिको सुन्दर शब्दोंके द्वारा उसे प्रद
करते है । इस व्यापारके करते रहनेसे इस अतरात्माको बहुत ब
अभ्यास हो जाता है, जिससे यह जगतमें ज्ञानवानोंकी श्रेर्णि
मान्य हो जाता है । इस उद्यमके बलसे यह जब प्रचुर आत्मी
धनका धनी हो जाता है तब देन लेनके व्यापारसे छुट्टी पाकर पर
सतोषित हो अपने स्वधनके मानमें उन्मग्न हो जाता है, फिर किसीः
इच्छा न रख अपनी स्वाभाविक सम्पत्तिके बलसे शिव-तियाको
रजायमान करनेकी कोशिष करता है । इस तरह चेष्टित हो वि
कारक कर्मोंको अतिशयरूप धर्मध्यानके बलसे क्षय करता
हुआ शुक्लध्यानमें पहुंच जाता है और प्रथम शुक्लध्यानके
तीव्रतम बलसे मोहशत्रुका क्षयकर द्वितीय शुक्लध्यानके द्वारा

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय कर्मोंका नाशकर, स्वाभाविक सुखको पाकर तथा शिवरमणीसे समापण कर जीवन्मुक्त हो अनुभवानन्दका अनुपम स्वाद लेता है।

निजगुण गणना।

(३८)

परम पुरुषार्थधारी, शिव-विहारी, ज्ञानानन्द-रस-सचारी, सम्यग्दृष्टी आत्मा जब अपने आत्मीक धनकी गणना करता है तब गणना करते करते कभी भी अंतको प्राप्त नहीं होता। अपनी शक्तिकी हीन प्रगटताके कारण थोडीसी ही गणना करके थक जाता है और आराम लेनेके लिये अपने शुभ गुणोंसे अन्य अनेक शुभ भावोंकी गणनामें लग-जाता है, परन्तु ऐसा करते हुए भी इसको अपने आत्मीक धनकी गणनाका ख्याल छूटता नहीं। इस कारण तुरत ही निज शक्तिको सम्हार निज धनकी गणनामें लवलीन हो जाता है। यही आप भवताप-को शात कर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें शात कर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें इस जापी आत्माको स्वामृत-रसकी एक बूद प्रदान करती है। जिस बूदका स्वाद ले यह स्वस्वादी दूसरी बूदके लिये फिर उत्सुक हो जाता है जैसे ससार-कूपमें पडा हुआ पथिक मधुमच्छिकाके छत्तेसे गिरे हुए एक बिन्दुको चखकर उसकी आशामें फिर मुँह फैलाए रहता है और आप भयानक अजगर-के मुखमें गिरनेको है, इस बात को नहीं गिनता है, उसी तरह

यह स्वरस–वेदी ससार पतनसे निर्भय रह निज रस विन्दुकी आशा करता है, परन्तु यह सम्यक् पुरुषार्थी है, इससे मात्र आशा ही करके चुप नहीं हो जाता है। इसकी रुचि इसको शीघ्र ही स्वसवेद–रसका अनुभव कराती है। त्रिलोकके षट्द्रव्यमय पदार्थोंको सम्यक् श्रद्धानमें रखनेवाला यह सुधी उन सम्पूर्ण पदार्थोंमें किसी तरहका भी सासारिक राग और द्वेष नहीं करता है, कि जिन पदार्थोंको मिथ्या दृष्टी सम्बन्ध करके अपने मान लेता है तथा मनको प्यारे पदार्थोंमें राग और असुहावने पदार्थोंमें द्वेष करता है। यथार्थ वेदी ही वास्तवमें आत्मज्ञानी और सुखमई है। वही वीतराग–विज्ञानतारूपी अपूर्व शक्तिमई देवीका सच्चा उपासक है। वही परम उत्सवमई आत्मीक अखाडेमें समस्त त्रिलोक जन–समूहके सन्मुख ज्ञानानन्द नाम नृत्य करके उसी तरह अपने मोक्ष–राजाको रिझाता है, जिस तरह इन्द्र जन्मोत्सवके समय श्रीतीर्थंकर प्रभु और उनके माता पिताके सन्मुख आकर आनद नाटक करके आनन्द करता है। यह समयसारका नाटक परमसुखरूप है। जो इस नाटकके रसिया हैं–वे इस दु खरूप भवातापके अन्दर निवास करते हुए भी मोक्ष-वासकेसे परमाल्हादके भोक्ता है। यह बात बिलकुल सत्य है कि अनत गुण पर्यायधारी आत्माका स्वरूप स्याद्वादके द्वारा सम्यक् निश्चय कर जो कोई जीवात्मा स्वात्म स्वभावमें लवलीन होकर विषय कषायोंसे हटता है और पुन पुन शुद्धात्मानुभवको भावना करता है, वही जीव स्वात्मानुभव करके अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

न कर्त्ता हूं न भोक्ता हूं।

(३९)

मै बधा हू व खुला, मै ससारी हूं व सिद्ध, मैं क्रियावान हू व अक्रिय, मैं सरागी हू व वीतरागी, मै मूढ हू व चतुर, मै दुष्ट हू व सज्जन, मै कर्त्ता हू व अकर्त्ता, मैं भोक्ता हू व अभोक्ता, मै सूक्ष्म हू व स्थूल, मै अनेक हू व एक, मै क्रोधी हू व शान्त, मैं नित्य हू व अनित्य, मै दृश्य हू व अदृश्य, मै आगमज्ञ हू व स्वभावज्ञ, मैं लोभी हू व सतोषी, मै जन्मा हू व अजन्मा, मै सुखी हू व दुखी, मै वर्णवान हू व अवर्णवान इत्यादि अनेक वचनके जालोंको इन्द्रजालकासा फैलाव समझकर जो कोई उन्हें दूर करता है और इन विकल्प-जालोंसे अतीत निजरसमय साक्षात् स्वभावमें स्फुरायमान ज्ञान ज्योतिको ही ग्रहणकर सम्पूर्ण लोकालोकके पदार्थोंके सम्यक् कारण और कार्यका ज्ञाता होता हुआ अपनी शुद्ध चैतन्यमयी जातिसे ही नाता करता है और उनसे स्वरस-वेदनका आनन्द पर-स्पर लेता देता है वही आत्मा तत्त्वज्ञानी और आसन्न-भव्य है। यही स्वभाव-खोजी अपनी उपयोग परिणतिरूपी जलको त्रिलोक-बनसे समेटकर अपने स्वरूपके ज्ञानमई नीचे खाडेमें भरकर अटूट अमृतके भडारका धनी होता है और उस धनके सुखमय मदमें ऐसा उन्मत्त हो जाता है कि रच मात्र भी अन्यकी परवाह नहीं करता। एक निज अनुभूतिका ही प्यारा रहता है और उसीमें रति करता है। दृढ सम्यक्तकी अचल महिमा उसके स्वरूपमें

प्रतिभा समान होती है। वह ज्ञानी अपने आनद अनुभवरूपी राज्यका राज करता है और स्वतंत्र अतींद्रिय होकर इंद्रिय विषयोंकी परवाह रखता नहीं। स्वमनको स्वमननमें मगन कर स्वरूपावलम्बी रहता है। इस ध्यानी भेद–ज्ञानीकी शक्ति जैसे स्वात्मश्रेणीके आरोहणमें उत्साहित होती है, ऐसे ही परको स्वात्मसुधारमें स्थिरीभूत करनेके लिये इसकी वचन–प्रणाली वहुत ही दृढ कार्य करती है। जैसे वचनमें दृढता अपूर्वता प्रगट करती है, ऐसे ही इसके शरीरसे प्रतिपादन किये हुए समस्त कार्य सम्यक् परको अबाधाकारी और न्याय मार्गकी ओर झुके हुए होते है। व्यवहार प्रवृत्ति भी ज्ञान वैराग्यसे पूर्ण होती है, जिस निमित्तसे इस आत्माको अपराधी वननेका वहुत कम भय रहता है। वास्तवमें यह बात सत्य है, जो ज्ञाता दृष्टा रहता है और कर्तव्यपनेके अथवा भोक्तापनेके अहकारको नहीं करता है, उसको बधनमें पडनेकी शका ही क्यों हो ? जो पर-क्रियाको आपकी क्रिया-श्रद्धान करता है वही अपनी मिथ्याबुद्धिसे परका कर्ता और भोक्ता बनता है तथा इस अपनी असत् बुद्धिसे वृथा सक्लेश उठाता और कर्मोंको बाधता है। शुद्ध नयकी डोरको दृढतासे पकडे हुए, जो जगत्में क्रिया करता है वह क्रिया करता हुआ भी अक्रिय है। भेद-ज्ञानका निर्मल जल उसके अतरगमें निरतर बहा करता है। धन्य है! यह शात जल कि जिसकी ठडक इसको ससारके क्षणिक आतापोंसे पृथक रखती है। तथा इसके आत्माको वैसी ही आल्हादता देती है कि जैसे पूर्णमासीके चद्रमाकी कला दर्शकको हर्ष उत्पन्न करती है। इस परमानन्दके

विलासमें तल्लीन होकर यह अंतरात्मा वीतराग-विज्ञानी रहकर तथा शिव-तियाके मोहमें रति करके निरंतर अनुभवानंदका स्वाद लेता है।

गतिमार्गणामें मैं ही हूं।

(४०)

त्रिलोकका स्वामी, शिव-रमनीका वर, आत्मीक अनंत गुणरूप धनका धनी वास्तवमें मैं ही तो हूं। मेरा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य्य मेरे ही में हैं। मेरे निवासका स्थान मेरे ही आत्माका असंख्यात प्रदेशमयी चेतन्य नगर है। मैं गतिमार्गणासे भिन्न हूं। मुझे कोई चारों गतियोंके स्वांगोंमें ढूंढा चाहे तो मैं कहीं भी नहीं मिल सक्ता हूं। इन गतियोंका हेतु, स्वरूप, कार्य्य, और फल समस्त ही मेरी निर्मल शुद्ध परिणतिसे विपरीत है। अहमिन्द्र, इन्द्र तथा सुर असुर सर्व ही निज स्वभावसे भिन्न पर पुद्गल कर्मरूपी वर्गणाओंके निमित्तसे अपने २ रूप, पद, कार्य्य और स्थानमें लवलीन है। उनकी सारी क्रीडा, उनका सारा भ्रमण, उनकी सारी धर्मक्रिया मेरी शुद्ध पारिणामिक क्रियासे सर्वथा विरुद्ध है। चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव आदि सर्व ही नर अपने २ पुद्गलोंके अहकारमें अथवा यदि वैराग्य हुआ तो उनसे वैराग्य भाव भजनेमें परकी ही चिन्ता करते हुए मेरी स्वाभाविक निश्चलतासे पराङ्मुख हैं। अष्टापद सिंह, गज, अश्व, मयूर, महामत्स्यादि थलचर, नभचर, जलचर तथा समस्त ही द्वीन्द्रियादि विकलत्रय व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति, तथा साधारण निगोदराशी आदि प्राणधारियोंके शरीर और

चेष्टाओंमें झाककर देखा जाय तो सर्व ही पुद्गलका नाट्य कर रहे है । उनका यह नाट्य मेरे समयसारके अद्भुत नाट्यसे सर्वथा निराला है । सातों नरकके नारकी निरन्तर अशुभ शरीर, अशुभ विक्रिया, अशुभ परिणाम और कषायके वशीभूत हो परस्पर मारण, ताडन आदिकी कुक्रिया करते व दु खसे विलाप करते है तथा परस्पर छेदे भेदे जाते हुए भी अपने स्थूल शरीरको नहीं त्याग सकते है । ऐसे नारकियोंकी आकुलतामई चेष्टायें मेरी निराकुल स्वानन्दरूप स्वधाम अभिराम गुणग्रामकी स्वभाव भोगनेरूप क्रियासे बिलकुल अनोखी है चारों गतियोंमें मार्गणा करनेसे मेरा पता किसीको भी मिलना दुस्वा है । यद्यपि मै गतिसे भिन्न सुगतिरूप और निर्द्वन्द्व हू तथापि यदि कोई चर्म दृष्टि बन्दकर सम्यग्ज्ञानकी दृष्टिसे इन चारों गतियोंमें भी मुझे देखना चाहे तो मै अवश्य दिखलाई दिया जा सकता हू। यद्यपि चारों गतियोंके प्राणधारियोंकी भिन्न २ आकृति और क्रियायें है, परन्तु सम्यक्तीको तो मै इन गतियोंके भीतर भी एक रूप शुद्ध ही दृष्टि गोचर हूगा । वास्तवमें मेरा आकार, मेरा गुण, मेरा स्वरूप, मेरी पर्य्याय यथार्थमें जैसीकी तैसी ही रहती है । क्या कभी सूर्य्यका तेज मेघाडम्बरके आनेसे जाता है ? क्या कभी रत्नकी ज्योति मिट्टीसे लिप्त हो जानेपर मटियाली होती है ? क्या कभी सालिका चाँवल भूसीमें लिप्त रहनेसे भूसीरूप होता है ? क्या कभी तैजस शरीर समस्त ससारियोंमें लीन रहनेपर भी अतैजसरूप परिणमता है ? क्या कभी चदनका काष्ठ अन्य काष्ठके साथ जलनेपर भी अपनी निराली सुगन्धको त्यागता है। निश्चयसे मेरी शुद्ध

अनुभूति नित्य ही मेरे साथ रहती है। मेरी अनुभवशक्तिका घात कोई कर नहीं सकता। चाहे मैं चारों गतियोंकी ८४ लाख योनि और १९७॥ कोडकुल कोडीमें भ्रमण कर आऊ, परन्तु मेरे गुणोंको कोई क्षीण करनेवाला नहीं है। मे अपनी स्वाभाविक सम्पदाको लिये हुए नित्य ही सतुष्ट रहता हुआ और अपनी अनुभूति सखीसे गोष्टी करता हुआ स्वभावसे ही अनुभवानन्दका स्वाद लेता हू।

इन्द्रियमार्गणाकी ओछी शक्ति।

(४१)

अतीन्द्रिय आत्मारामका रचा हुआ आराम अत्यन्त मनोहर, सुखप्रद, गुणशाली और चिंतातीत है। इस मनोहर आराममें परमात्माराम विश्राम करता हुआ शिव—नारीके सातामय स्पर्शका भोगकर अटूट अमृतके स्वादको लेता हुआ इन्द्रियग्रामोंमें परिभ्रमण करके उनकी सैर देखनेका कभी विचार ही नहीं करता। वास्तवमें आत्माराम इन्द्रियमार्गणासे सर्वथा भिन्न है। मतिज्ञानावरणीयकर्मके और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमको अनादि कर्मबधकी सतानका भोगनेवाला ससारी जीव कारण पाकर एकेन्द्रीकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतीकी कायमें मात्र एक स्पर्श इन्द्री प्राप्तकर उत्कृष्ट ४०० धनुष दूर (४ हाथका धनुष) क्षेत्र तकके पदार्थोंके कोमल, कठोर, हलका, भारी, रूखा, चिकना, उष्ण, शीत इन आठ स्पर्शित विषयोंको मूर्च्छा बुद्धिसे ग्रहण करता हुआ दुखी सुखी होता है। धन्य है! यह अतीन्द्रिय आत्मा, जिसको यह आकुलतामई पराधीन क्षणिक

सुख दु.ख नहीं है। दो इन्द्रीकी त्रस पर्यायको धारते हुए विकले न्द्रिय जीव उपरोक्त कर्मके क्षयोपशमसे उत्कृष्ट स्पर्श करने योग्य पदार्थोंके विषयोंको ८०० धनुपक्षेत्र तक की दूरीसे तथा स्वादने योग्य पदार्थोंके रस विषयको ६४ धनुपतककी दूरीसे जानकर मोहित हो अपने आत्मीक अनुभवके ज्ञानसे पराङ्मुख रहते है। धन्य है शिवरमणीका वर कि जिसको इस पराधीन ताके जालसे मुक्ति होगई है। तीन इन्द्रीधारी चींटी आदि त्रसजीव निज कृत कर्माधीन पडे हुए मानों कर्मके मदसे स्वय चकनाचूर हुए स्पर्शने योग्य पदार्थोंको उत्कृष्ट १६०० धनुप तकके क्षेत्रसे स्वादने योग्य पदार्थोंको उत्कृष्ट १२८ धनुप तकके क्षेत्रसे तथा सूघने योग्य पदार्थोंको उत्कृष्ट १०० धनुप तकके क्षेत्रसे जानकर तन्मय हो अपनी पर्य्यायको शीघ्र पूर्णकर पर्यायातर होते है। खेद है, इन विचारे विपय-ग्रहणमें रात्रिंदिवस परिश्रम करनेवाले जीवोंको स्वात्म तन्मयताकी गध भी प्राप्त नहीं होती। चार इन्द्रीवाले मक्षिका, भ्रमर आदि जीव आत्मरुचि-कारण मानसिक वृत्तिको न प्राप्त किये हुए उत्कृष्टतासे स्पर्शने योग्य पदार्थोंको ३२०० धनुप दूर क्षेत्रसे, स्वादने योग्य वस्तुओंको २९६ धनुप दूर क्षेत्रसे, सूघने योग्य वस्तुओंको २०० धनुप दूर क्षेत्रसे तथा देखने योग्य पदार्थोंको २९५४ योजन दूर क्षेत्रसे माळूमकर उनके मोहमें आपेकी किसी समय भी खबर न रखते हुए क्षोभित होते है। धन्य है! निजानन्दी जीव जिनको इस क्षोभके फन्दमें पडनेकी आवश्यक्ता नहीं है। पाच इन्द्रीवाले जीव सत्यासत्य हिताहित विचारशक्ति-धारक मनको न पाकर और

त्रिलोकालोक ज्ञाता परमात्माके दर्शनसे विमुख रह उत्कृष्टतया स्पर्शने योग्य पदार्थोंको ६४०० धनुष दूर क्षेत्रसे, रस लेने योग्य पदार्थोंको ५१२ धनुष दूर क्षेत्रसे, सूंघने योग्य पदार्थोंको ४०० धनुष दूर क्षेत्रसे, देखने योग्य पदार्थोंको ५९०८ योजन दूर क्षेत्रसे तथा सुनने योग्य पदार्थोंको ८०० धनुष दूर क्षेत्रसे जान मूर्छित बुद्धिकर उनके रागमें तन्मय रहते हुए स्वरस—स्वादका लाभ नहीं करते हैं। परन्तु पचेन्द्री जीव मनका धारी होकर भी अर्थात् उत्कृष्ट तीर्थंकर चक्रवर्ती जीव होकर भी तथा स्पर्शने योग्य, स्वादने योग्य, और सूघने योग्य पदार्थोंको नौ नौ योजन दूर क्षेत्रसे तथा देखने योग्य पदार्थोंको ४७२६३७/२० योजन दूर क्षेत्रसे*, तथा सुनने योग्य पदार्थोंको १२ योजन दूर क्षेत्रसे मालूम करके भी तृप्त नहीं होते और अपने मनमें इस बातकी ईर्षा करते है कि श्रीअरहत सिद्धपरमात्माके सदृश हमारेमें ऐसी शक्ति क्यों नहीं पैदा हो जाती है? जिससे हम तीन लोकके समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें विना इन्द्रियोंकी सहायताके ही उनके समस्त विषयोंसहित जान लेवें ओर इस कारण आकुलताओंके प्रपचोंसे दूर नहीं होते। वास्तवमें क्षयोपशम ज्ञान और क्षयोपशम वीर्य्यकी गम्य कहा तक हो? पुद्गलके विकारोंका सम्बन्ध आत्माको विकारी बनाता है। ऐसे सम्बन्धका मोह ही आत्माको पराधीन, दुःखी, रागी, द्वेषी और आकुलित करता है।

---

*नोट—तीर्थंकर चक्रवर्ती जब अयोध्याजीके महल ऊपर खड़े हों तो सूर्यको निषिध पर्वतके ऊपर सदृश स्थानमें स्थित देख सके हैं, इसकी दूरी अयोध्यासे ४७२६३७/२० योजन होती है।

धन्य है। वे वीर आत्मा, जो वैराग्यकी मनोहर छटाको प्राप्तकर भेद ज्ञानकी अग्नि—जला कर्मकाण्डको भस्मकर आत्माके पगको मुक्त करते हैं और निज अनतगुण वृक्षोंसे प्रफुल्लित बागमें कल्लोलकर निज अनुभूति दासीकी सहायतासे शिव—तियासे परम पवित्रतासे वार्तालाप करते हुए निज अनुपम आत्मीक अनुभवानंदका स्वाद ले उन्मत्त रहते है।

कायमार्गणामें आकुलता।

(४२)

सुख सतोषी, ज्ञान ध्यान तपमें लीन, ब्रह्मविद्या—अभ्यासी, शुद्ध निश्चय दृष्टिसे परमात्मा, व्यवहारमें स्वपदसे पृथकूभूत अतरात्मा अपने अद्भुत ज्ञानके बलसे किसीपर पदार्थ सबधी राग और द्वेषको अपनेमें नहीं आने देता है। दृढ अचल सुमेरुके समान निज अनुभूतिमें तन्मयताको कायम रक्खे हुए विना तृप्ति प्राप्त किये सुधाके उच्च श्रोतसे अमृतकी धाराका पान किया करता है। अपने आत्माको चैतन्यमई कायके अन्दर निज अनुभूति अर्द्धाङ्गिनीको लिपटाए हुए ऐसा स्वरूप मूर्छित रहता है कि अपनी जडमई कायोंकी परवाह ही नहीं करता । औदारिक, तैजस, कार्माण—इन तीनों शरीरोंमें समय २ अनते कर्म नोकर्म वर्गणाओंका मिलना और बिछुडना होते रहनेपर भी इन कायोंका उपादान कारण जडको अनुभव कर इन जडोंके हानि लाभसे अपनी हानि न करता हुआ अपने चेतनरामको अलग रखता है। धन्य है! यह शूरवीर जो अपनी परिणति कायमार्गणामें न चलाकर स्वरूप मगन रहता है।

जिस कायमार्गणामें भ्रमते हुए एकेन्द्री—पृथ्वी, जल, तेज, वायु-कायिक जीव क्रमसे मसूर व चनेके सदृश गोलाकर, जल—बिन्दु सदृश गोल, सूची (सुई) सदृश ऊर्द्ध बहुमुख, ध्वजा सदृश चौकोर आकारवाले सर्व ही उत्कृष्ट व जघन्य घनांगुलके असख्यात भागमात्र अवगाहनाको घेरे हुए निगोदरहित ऐसे अदृश्य शरीरको रक्खे हुए कि जबतक इनके बहुतसे शरीरका समूह न मिले तबतक इन्द्रिय—गोचर न हों, मूर्च्छित रहते हुए अटमई बने रहते है, उस कायमार्गणामें उस अनुभवीका गमन नहीं होता। जिस एक जीव वाली प्रत्येक अप्रतिष्ठित व अनेक बादर निगोदजीव आश्रित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जघन्य घनांगुलका असख्यातवा भाग वाली तथा उत्कृष्ट १००० योजन (छोटा) लम्बी, एक योजन चौडी गोल कमलकी कायमें पडे हुए ससारी जीव छेदन भेदन आदिके दु ख सहते हुए आकुलित रहते है, उस कायके मोहमें आत्मानदीका पतन नहीं होता, दो इन्द्री जीव जघन्य घनांगुलका सख्यातवा भाग अनुधरीकी व उत्कृष्ट १२ योजन लबी सखकी पर्यायमें, ते इन्द्री जीव जघन्य कुथु हो अनुधरीसे सख्यात गुणी व उत्कृष्ट ग्रीष्मकालमें त्रस जीव हो ३ कोस लम्बी कायामें, चौइन्द्री जघन्य काणममक्खी हो कुथुसे सख्यात गुणी व उत्कृष्ट एक योजन लम्बी भ्रमरकी कायामें, पचेन्द्री जघन्य सिक्थक मत्स्य हो काणमक्खीसे सख्यात गुणी व उत्कृष्ट तीन पल्यके शरीरमें पैदा हो शरीर—मोही रह मिथ्यादर्शनके कारण मूर्छा और वियोगसे दु ख पाते हैं, परन्तु हर्ष है कि स्वात्म अवलोकी सम्यग्दृष्टीको इस

दु खका अनुभव नहीं है । जो भेद–विज्ञानके शस्त्रको धोर हुए शूर वीरताका जल पीते हैं, उनको कायकी सुरूपता व कुरूपता कुछ भी असर नहीं करती । सनतकुमार चक्रवर्ती और उनके रूपके मोही देवोंके समान यौवनकी क्षणभगुरताका विचार कर अपूर्व यौवनधारी निज जीव तत्त्वके विलासमें आनन्दित रहते हुए समता–नदीके जलको पीते हुए राग द्वेप शत्रुओंको वैराग्य मत्रसे दूर दूर रखते हुए स्वरूपगुप्त हो हर्पित होते हुए सदा अनुभवानंदका स्वाद ले चिरसुखी रहते है ।

मै अकाय हूं ।

(४२)

निज रस–कूप, शिवनगरी–भूप, चैतन्यरूप, अविनाशी परमात्मा के मननमें मोहित हो भव्य अतरात्मा आत्मसत्ताके रमणीय काननमें पहुच जाता है और उस काननके अगरूप अनत गुणमई अनेक वृक्षोंको क्रम क्रमसे अवलोकन करता हुआ अपनी स्थिति अपना आचरण ऐसे मनोहर वनमें जान जान अपने चित्तको प्रसन्न करता है प्रसन्नताके साथ एक आश्चर्य्य भी करता है कि इस आत्म–वनके एक २ गुणरूप वृक्षके प्रदेश अर्थात् स्थानमें अपने अन्य सम्पूर्ण गुण–तरुओंकी सत्ता मौजूद है । एक वृक्षकी सुन्दरतामें अनत वृक्षोंकी सुन्दरता झलकती है । इस अतिशयरूप बनके प्रभावसे इस अंतरात्माको आत्माका ही विचार है, उसीमें अपने परिणमनको करे हुए है । मेरे कार्माण, तैजस व औदारिक शरीर है कि नहीं, इस बात

विकल्पसे अलग रहता है। वास्तवमें यह शरीर पुद्गलकी वर्गणाओंसे ही उत्पन्न हैं। जिस पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके २० गुण हैं वे गुण आत्मामें कोई भी नहीं है, न यह क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य शूद्र है । यह सब नाम शरीर ही के है, आत्माके नहीं । जिस शरीरका निरन्तर पूरण गलन स्वभाव है, जो भीतर मलमूत्र आदिसे भरा है, जो स्वय अपवित्र और जो इसका स्पर्श करे उसको अपवित्र करनेवाला है, ऐसे तनमें निस्पृह हो जो चैतन्य तनकी पवित्रतामें तन्मय रहता है, अकायी रहकर स्वसमयके स्वादमें मग्न रहता है, ऐसे अनुभवीको अहमिन्द्रोंका वैक्रियक शरीर भी भिन्न ही प्रतीत होता है और वह तीन कालमें भी ऐसे तनकी कामना नहीं करता। जब जड तन ही भिन्न है तब तनके सम्बन्धी माता, पिता, भाई, बन्धु, पुत्र, स्त्री, पुत्री, धन, धान्य, क्षेत्र, महल, आदि सर्व ही आत्मस्वरूपसे पृथक् है। जो मोही इनके मोहमें पड अपने स्वरूपको भुलाता है–वह अपना ही शत्रु, द्रोही और अपना ही अकल्याण करनेवाला है। निज रस–रसियाको कोई पर रसके स्वादकी चिन्ता नहीं होती–वह रसिक स्वसवेदन ज्ञान, अमल, गुणवान्, भवदधि–तारणयानपर आरूढ हो समय २ विशुद्ध भावोंमें बढता जाता है, ओर अपने सुखरूप स्वरूपमें लवलीन रह शिव–नारीको मोहनेवाले अद्भुत आकर्षणमें प्रवेशकर क्षणिक सुखोंसे अतीत सार ममता स्वरूप अनुभवानन्दका ध्यान करता है।

योगमार्गणामें डगमगाहट ।

(४४)

भवाटवी—भ्रमणकारी, ससारी, परम समताधारी, स्वपदलाभ विस्तारी, भवहारी, सर्वज्ञ, वीतराग गुणधारीको न पाकर, भव—जालमें फसा रह कर, चारों गतियोंमें अपने योग्य शरीर धार, योगोंकी परणतिमें उलझा हुआ, अयोग, अलिप्त, अनत, अमिट, अपूर्व तथा आनन्दमय पर्य्यायको नहीं प्राप्त करता है । यही इसकी गफलत इसको सदा ही दु ख देनेवाली है। **योगमार्गणामें** पड़ा हुआ पर पदार्थको अपनेमें आकर्षण करता है और अपने स्नेह व अस्नेह भावके निमित्त स्वय कर्मबधका रोग पीछे लगा रोगी बनता है। परिपाटी रूप अनादि और सम्बन्ध वियोगकी अपेक्षा सादि पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे ससारी जीव अपनेमें जो ज्ञानावरणादि क और औदारिकादि नोकर्मकी वर्गणाओंको ग्रहण करनेकी शक्ति रूप **भावयोग** और ऐसे आत्माके प्रदेशोंका पारिस्पन्द नाम हलन चलनरूप **द्रव्ययोग** रखता है । तथा जिस योगके १५ भेदोंमें फस जाता है, इस कारण वह अपनी स्वतत्रतासे विमुख हो आप ही दु ख उठाता है । सत्यार्थ ज्ञानको पैदा करनेकी शक्तिरूप मानसिक भाव व वचन, तथा इसका विरोधी भाव व वचन, सत्यासत्य मिश्रित भाव व वचन, तथा सत्यासत्य कहे जानेकी शक्तिसे रहित अवक्तव्य, ऐसे सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार भेदरूप, मन व वचन योगके ८ भेद तथा औदारिक, औदारिकमिश्र (अपर्याप्त अवस्थामें), वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और

कार्माण ऐसे ७ काय सम्बन्धी योगोंकी विक्रियासे वृथा ही पर पदार्थ द्वारा अपने आत्म-प्रदेशोंको डगमगाता है। सत्य और अनुभय वचनयोगसे प्रगट की हुई दिव्यध्वनिके द्वारा आत्मधर्मकी प्रगटता होती है, जिसको व्यवहारी जन पाकर व्यवहारकी सीढीसे निश्चयकी ओर मुख करते हुए चढते हैं और योगोंके हलन चलनसे रहितपना पाकर अयोगी हो सिद्धालयमें निवास करते है। प्रकृति और प्रदेशबन्धका कारण योग है, ऐसा जानते हुए भी इसकी कुछ परवाह न कर योगीश्वर ध्यानके द्वारा निश्चलता प्राप्त करते हुए स्वरूप मगन रहते हैं तथा परम प्रतापी आत्मारामके सद्गुण पुष्पोंकी सुगंधता लेते हुए ऐसे मोहित हो जाते हैं कि फिर जगत्के पौद्गलिक पुष्पोंकी कभी परवाह रखते नहीं। निज अद्भुत सत्तामें निवास करते हुए उसी भूमिमें ही चलना योग्य समझते है, तथा उससे बाहर किसी भी पर वस्तुकी सत्तामें गमन करते नहीं। निज-सत्ता गुणरत्नोंसे जडित परम सुखदाई है, यही इसका स्वपद और स्वरूप है। जो इस स्व पदमें निरालम्ब हो ठहरते हे वे महा रमणीक सुख भाजन वीतरागमई पर्वतपर आत्मज्ञान सिंहासनपर बैठ जाते हैं और अष्ट कर्म-जालसे रहित तैजस वर्गणा विहीन आत्मस्वरूपकी शुद्धताका मनन करते हुए विनाशीक रसोंसे रहित अरस, अगंध, अस्पर्श, अवर्ण और अशब्द स्वरस सुधापुंज समूहका विलास करते हुए, पर अनुभवसे रहित सत्य अनुभवानंदका स्वाद लेते हुए परम तृप्त रहते हैं।

वेदमार्गणाकी आकुलता।

(४९)

शशि सम उज्ज्वल गुणधारी, अविकारी, अत्यन्त निकट भव्य जीव कुमुद विस्तारी, अज्ञान–निशि–तम–हारी, भवाताप–संतप्त, सत्व शमनकारी, परवस्तु आधाररहित निराधार परिणति आकाश विहारी, अनत गुणकला भडारी, परमात्मा सदृश अतरात्मा आज सम्पूर्ण त्रिवेदरूप तीव्र सक्लेशतासे रहित हो वेदरहित मुक्त–तियाके स्मरणमें दत्तचित्त हो रहा है और अपनेको ससारमें रहते हुए भी संसारावस्थासे पृथक् मान रहा है, जिस वेदमार्गणामें भ्रमण करके यह अज्ञानी जीव अपना ससार बनाता है, उस वेदके विचारको जब हेय निरीक्षित किया जाता है तब स्वत स्वभाव ही अन्तरात्माका पग मोक्ष–मार्गमें बढता चला जाता है। जिस पुरुष वेदकी तीव्रताने त्रिखंडी रावणको विध्वस कर नर्कवास दिया, व ग्यारहवें रुद्र सात्विकका स्पर्श चिन्ह छिदवा भ्रष्ट करा, नर्क पहुचाया, व दुःशासनको सभामें अपमानित करा कुगति धाम बसाया, तथा जिस पुरुष वेदके मोहमें पडे ससारी जन स्त्रीमें लुब्ध हो निज–शीलरत्नको मलीन करते हैं, उस पुरुष वेदको निज अरि जान जो त्यागते और ब्रह्मस्वरूपमें रमन करते–वे सच्चे अतरात्मा ब्राह्मण और ब्रह्मचारी हैं। जिस स्त्री वेदकी उत्कटताने चन्द्रनखाका मन एकाएक पुत्र शोकसे हटा उसे श्रीरामचन्द्र महात्माके रूपमें लुब्ध करा अपमानित और यहा तक क्रोधित कराया कि उसका यही क्रोध महासती सीतापर उपसर्ग पडने, राक्षसवंशके क्षय होने तथा असख्यात वीरोंके युद्धमें नाश

होनेका कारण हुआ व जिस स्त्रीवेदकी तीव्रतासे चम्पापुरकी रानीने श्रीसुदर्शन सेठ ऐसे शीलवान्को शूलीपर बिठवाया व जिस वेदके तीव्र मोहमें पड स्त्री-समाज कामवेदनासे आकुल हो निज निजानन्द अविनाशी शिवनाथके मोहसे छूटी रह सांसारिक पुरुषोंकी इच्छा कर नर्क, तिर्यंच योनि वास करती हैं, उस स्त्रीवेदको हेय समझ जो जीवात्मा त्याग करते है वे ही निर्वेद अवस्था प्राप्तकर स्वात्म स्वरूपमें मगन होते हैं। जिस नपुंसक वेदमें पडे नारकी, नर और तिर्यंच कामकी तीव्र ज्वालासे दग्धायमान होते हुए सम्यग्दृष्टिका लाभ न कर आत्मस्वरूपको नहीं पहिचानते उस खंड वेदको सर्वथा हेय समझ अन्तरात्मा आंतरिक मनोहर वृत्तिका अवलम्बन ले सुखिया स्वभाव धारण करते हैं। जो इस शरीर, शरीरके अवयव और इन्द्री विषय रागद्वेषादि कषाय-इन सबको अपने स्वरूपसे पृथक् जानते, मानते और अनुभव करते है, वे जीव भवकारी निराकुलताहारी सुखोंसे अतीत भवहारी निराकुलताकारी अनुभवानंदका सुधामय रस पी अत्यन्त तृप्त रह कृतकृत्यका अम्बर ओढ दिगम्बरपनेकी महत्त्वता प्रगट करते हैं।

कषायोंकी वंचकता।

(४६)

परब्रह्म-स्वरूप-विकाशी, सम्यक् आनन्द-अभिलाषी, ज्ञान, दर्शन, सुखवीर्य्यपद-प्रकाशी, भवतमनाशीकी सुधामय मूर्तिका अवलोकन भव्यजीव सम्यक्दृष्टीके तनमें रोमाञ्चितता उदयमान

करता हुआ एक ऐसा शान्त जलका प्रवाह वहाता है कि, जिसकी अमलधारा कर्मवर्गणाओंके शिथिल और ध्वस्त समूहको आत्म प्रदेशोंकी बन्ध अवस्थासे एकाएक हटाती हुई, आत्माको हल्का करती हुई मोक्ष विमानमें निज निष्कटक राज्य करनेके लिये योग्य वनाती जाती है। वीतराग विज्ञान पतिका स्पर्श अनुभूति नारीको ऐसा अनुपम बल प्रदान करता है कि, मोह राजाके चाकर चार कषाय सत्र योद्धाओंको आक्रमण और उनका भ्रमजाल इस अनुभू तिको अचेत नहीं करता तथा सचेत अवस्थामें रखकर मोहके जालोंसे बचनेका अपूर्व बल प्रगट करता है। ससारासक्त जीवोंका भ्रमण कषायमार्गणामें ऐसा प्रबल रहता है कि बाह्यमें कषाय रहित वैरागी दीखनेपर भी अनतानुबधी किसी भी कषायकी उत्कटता—उस जीवका पीछा नहीं छोडती। द्रव्य लिंगी मुनि व्यवहार चारित्रको शास्त्रोक्त यथार्थ पालते हुए तथा यथार्थ मार्गका उपदेश दे हजारोंको सम्यक् मोक्ष—पथपर चलाते हुए भी कषाय वैरी द्वारा ऐसे दबाये जाते है कि श्रावक धर्मकी प्रथम सीढ़ी सम्यक्त अवस्थाको न पा भवविपिनके त्रासोंको नहीं दूर कर सके। देवोंको तीव्र लोभ तथा नारकियोंको तीव्र क्रोध अन्य कषायोंकी अपेक्षा अधिक विह्वल रखते और पौद्गलिक वासनाओंसे परिणामोंको हटने नहीं देते। परन्तु जिन देव व नारकियोंके अतरगमें भेदज्ञा नका दीपक जलता है, उनको कषायोंकी पवन अधकारमें नहीं कर सकी। वे स्वात्म—प्रकाशमें स्वरूप तन्मयतारूपी मोक्षमार्ग को पा आनन्दकी झलकसे अलग नहीं होते। नारकी जीव लोभव

जिस अतर्मुहूर्त काल तक रखते है, उससे सख्यात २ गुणा अधिक काल तक क्रमसे माया, मान तथा क्रोधका अनुभव करते तथा देव क्रोधको जिस अतर्मुहूर्त तक भोगते, उससे सख्यात २ गुणा काल तक क्रमसे मान, माया और लोमको धारण करते हैं। और मनुष्य तिर्यंच जिस अतर्मुहूर्त काल तक लोभ कपायको रखते है, उससे सख्यात २ गुणा काल तक क्रमसे माया, क्रोध और मानके हमलोंको सहन करते है। वास्तवमें चार गतिमें उत्पन्न नाना प्रकारके सुखदु ख रूप धान्योंको पैदा करनेवाला इस ससारी वैश्यका चाकर—भृत्य कपाय ही है। यही बन्धरूप क्षेत्रको तैयार करता और मिथ्यादर्शन रूप जीवके सक्लेश परिणामरूप बीजको बोता है जिसके कभी कडुवे कभी मीठे फल भोग २ यह जीव मीठे फलोंके लोभमें तरसा करता है, परन्तु अमृतमई स्वरूप भोग्य फलोंको न पाकर वृथा परमें सुख कल्प आकुलित होता है और अतरात्माकी तरह नि कपाय भावसे रचित शान्त भावकी सुखप्रद अमृतियोंको नहीं पा अनुभवानन्दके रससे वचित रह भव—भ्रमण करता है। धन्य हे कपाय—विजयी वीर आत्मा जिनकी आत्मभूमिको कपायोंका वेग किसी भी तरह मलीन नहीं कर सका, जो निरन्तर आत्मज्ञानका सुधारूप रस पान करते हैं वे ही भवकेक्षणिक सुखोंसे अतीत, अतीन्द्रिय, अविनाशी अनुभवानन्दको भोग तृप्त रहते हैं।

ज्ञानमार्गणाकी महत्त्वता।

(४७)

स्वसंवेदनज्ञानद्वारा मनन योग्य, सदा शुद्ध निरंजन, परम पारिणामिक भावका स्वामी, टंकोत्कीर्ण, ज्ञायक, एक–स्वभाव, सहज समाधिलीन, निर्विकार पदचारी, निराकुल ध्यान–कलाधारी, भवहारी सतनको सुखकारी, अत्यंत प्यारी मनोहारी छबिकी अटलबहारी जिस समय अंतरात्माके उदासीन तन प्रदेशोंपर आधारी हो जाती है तब ऐसा ही प्रतिभासता है, मानो आसमानी वस्त्रपर हीरे–रत्नके छोटे २ टुकडे जड दिये गये हों। चन्द्रकान्तमणिकी प्रभा सदृश प्रभावान् आत्मद्रव्य जब शशि सम उज्ज्वल परमात्मासे भेंट करता है तब उसके अंग २ से अमृतकी धारा बरसने लग जाती है जब श्रुतज्ञानकी पवनसे दीप्तिवान धर्मध्यान और शुक्लध्यान रूपी अग्नि अनादि कालसे आत्मारामको अचेत करनेवाले कर्मोंको जलाती है तो एकाएक स्वप्रभा लोकालोकको देखनेवाली उदयमान हो जाती है। इस केवलज्ञानमई प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञानमें विराजित आत्मा सकल परमात्मा हो, अपने विहारसे जगत्के निकट भव्योंको मार्ग दिखाता हुआ अटल स्वभावमें रहकर अनंतसुखको भोगता है। यद्यपि योगीराज निज तपकी शुद्ध भावनासे रहित, शुभ अनुरागकी उज्ज्वलतासे अवधिज्ञान प्राप्तकर रूपी पदार्थोंको देखते हैं और पिछले अगले भवोंके चरित्रोंको जान लेते है। अथवा मन पर्य्ययज्ञान उपलब्धकर अन्योंके मनमें वर्तनेवाले सूक्ष्म रूपी विषयोंका ज्ञान सरल व वक्र रूपसे कर लेते हैं, परन्तु इन दोनों ज्ञानोंसे अपने

शुद्धात्मानुभवकी सहायता कुछ भी पाते नहीं । जिस अनुभवके लिये उनको गुणवान् सुखवान श्रुतज्ञान ही की शरण लेनी पडती है। इन्द्री और विषयके संयोगके पीछे होनेवाले समयमें वस्तुका सत्तामात्र सामान्य निर्विकल्प अवलोकन दर्शन है । तत्पश्चात् देखे हुए पदार्थका वर्ण संस्थानादि विशेषका ग्रहण सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है । उसीके विशेष रूपको जानते हुए निश्चयपर आना, और उसे कालान्तरमें न भुलाना सो सर्व मतिज्ञान है। ५ इन्द्रिय और मनके द्वारा पदार्थके विषयका ज्ञानमात्र होना मतिज्ञान है, परन्तु उस ज्ञानसे सुखरूप व दुखरूप होना अथवा स्वप्रयोजनको पहिचान, हेय उपादेय समझना सो सम्पूर्ण महिमा श्रुतज्ञान ही की है । वृक्षादि एकेंद्री भी स्पर्श इन्द्रियद्वारा मात्र स्पर्श विषय मालूमकर अपने साथमें रहे हुए अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कारण ही दुख-सुखका वेदन करते हैं । धन्य है ! अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, जिसके अपुनरुक्त अक्षर ६४ द्विरूपवर्गधारा—१ अर्थात् (१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५) २० अंक प्रमाण संख्याको लिये है । तथा इनके बने हुए आचारांगादि द्वादशांगमें समाये हुए पद (११२८३५८००५) दस अंक प्रमाण है । एक पदमें (१६३४८३०७८८८) ११ अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर है । अब शेष अंग बाह्य (८०१०८१७५) ८ अंक प्रमाण अक्षरोंमें सामायिक आदि १४ प्रकीर्णक होते हैं । इतने विस्तार किये जाने पर भी यद्यपि सम्पूर्ण श्रुतज्ञानके धारी श्रुतकेवली सर्व वस्तु—स्वरूपको जानते है, तथापि अगाध केवलज्ञानरूप समुद्रका श्रुत ज्ञान एक

विन्दु मात्र ही ज्ञान है। जिस ज्ञानमार्गणामें वस्तुकी अनेकान्तता प्रतिभासती है उस ज्ञानमार्गणाके धनी एक अकेले आत्माराममें अपूर्व ज्ञाता दृष्टापनेकी शक्ति है । धन्य है आत्मा जिसके एक २ शुद्ध निर्मल प्रदेशमें यह अपूर्व शक्ति व्यक्त भावको भज रही है। शुद्ध निश्चय नयसे ऐसा ही स्वभाव सम्पूर्ण विश्वके अनतानत आत्माओंका है। जो कोई अतरात्मा इस शुद्ध निश्चय नयकी एकत्त्व दृष्टिसे सर्व जीवोंके शुद्ध स्वभावकी एकताका अनुभव करते है वे एक ब्रह्ममई शात–समुद्रमें डूबकर, अद्वैत–रसकी शीतलता उपलब्ध करते हुए, परमानदमई सुधास्वरूप अनुभवानन्दका अनुपम स्वाद ले, परम तृप्तताके पात्र बन अजर अमर पदवीके भोगी होते है।

संयममार्गणामें स्वरूप विकाश।

(४८)

सुधा–समुद्र–अवगाही, गुणसमूह–प्रवाही, निराकुल पद–ध्यायी, चैतन्यता समुदाई, शिवराई चेतनराम जब निज अनुभवके विलासमें हुल्लाशमान होता है तब परपदार्थोंके समूह अपनी सम्पूर्ण चंचलता और विकटताको लिये हुए आत्मारामकी वीतराग भूमिसे विदा हो जाते है और उनके जाते ही उस वीतरागमई, पृथ्वीमें ऐसी स्वच्छता प्रतिभा समान होती है कि, उस आत्माके ज्ञानके सन्मुख स्वभावसे ही आए हुए पदार्थ [illegible] ताको दिखलाते हुए भी और कपटके परदोंमें छिपे रह [illegible] भी चतुर अचैतन्य नहीं कर सके । [illegible] निज शुद्धात्म

प्रवेशरूप सयमका उत्साही हो ज्यों ही अपनी रक्षाके यत्नमें लग जाता है त्यों ही पचेन्द्रिय विषयोंकी ओर मनकी विषयप्रवृत्ति रुक जाती है तथा षट्कायके जीव उस अतरात्मासे अभयदानको पाने लग जाते है। असयम भावमें स्थित हुआ जीव भी यद्यपि विषय निरोध और पर दयाकी प्रगटतासे वञ्चित होता है तथापि जब शुद्ध बुद्ध ज्ञायकाकार टकोत्कीर्ण एक निजस्वरूपानन्दमें अनतानुबन्धी कषायके दबनेसे स्वरूपाचरण चारित्रके द्वारा एक निमेष मात्रके लिये भी मग्न हो जाता है, तो स्वत स्वभाव ही निश्चय सयमको पाकर आनन्दका अनुभव कर लेता है। अप्रत्याख्यानावरणी कषायोंके उपशम होनेसे इस अतरात्माको ऐसी शक्ति होजाती है कि यह इन्द्रिय विषयोंके रोकनेमें और परजीवोंकी रक्षामें अपने परिणामोंको चढाता हुआ देशसंयमको पाकर एक प्रतिमासे ग्यारह प्रतिमा तकमें आरोहण कर ऐसा शीघ्र २ शुद्धात्म गुफामें प्रवेश करनेका उत्साह और उद्यम करता है कि मानों इसको भव-थितिकारी परिणामोंसे ग्लानि ही पैदा हो गई है। यह श्रावकपद-धारी आवश्यकतानुसार कहीं २ अधिक व कम आरम्भ भी करता है व परिग्रह पोट भी धरता है, परन्तु यह सब कार्य उस अपराधी चोरके समान करता है जो मुक्त होनेकी इच्छा होनेपर दूसरोंके द्वारा कार्य्य बजानेके लिये प्रेरित किया जाता है। सज्वलन कषायकी स्थूल तथा मद अवस्थाको पाकर जब यह अतरात्मा सकलसयममें प्रविष्ट होता है तो छठेसे नौमें गुणस्थान तक सामायक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि सयमोंके द्वारा ऐसा स्वरूप मगन होता है कि ध्यानावस्थासे विचलित

बिन्दु मात्र ही ज्ञान है। जिस ज्ञानमार्गणामें वस्तुकी अनेकान्तता प्रतिभासती है उस ज्ञानमार्गणाके धनी एक अकेले आत्माराममें अपूर्व ज्ञाता दृष्टापनेकी शक्ति है । धन्य है आत्मा जिसके एक २ शुद्ध निर्मल प्रदेशमें यह अपूर्व शक्ति व्यक्त भावको भज रही है। शुद्ध निश्चय नयसे ऐसा ही स्वभाव सम्पूर्ण विश्वके अनतानत आत्माओंका है। जो कोई अतरात्मा इस शुद्ध निश्चय नयकी एकत्त्व दृष्टिसे सर्व जीवोंके शुद्ध स्वभावकी एकताका अनुभव करते है वे एक ब्रह्ममय शात–समुद्रमें डूबकर, अद्वैत–रसकी शीतलता उपलब्ध करते हुए परमानदमई सुधास्वरूप अनुभवानन्दका अनुपम स्वाद ले, परम तृप्तताके पात्र बन अजर अमर पदवीके भोगी होते हैं।

संयममार्गणामें स्वरूप विकाश।

(४८)

सुधा–समुद्र–अवगाही, गुणसमूह–प्रवाही, निराकुल पद–ध्यायी, चैतन्यता समुदाई, शिवराई चेतनराम जब निज अनुभवके विलासमें हुल्लासमान होता है तब परपदार्थोंके समूह अपनी सम्पूर्ण चंचलता और विकटताको लिये हुए आत्मारामकी वीतराग भूमिसे विदा हो जाते हैं और उनके जाते ही उस वीतरागमई पृथ्वीमें ऐसी स्वच्छता प्रतिभा समान होती है कि, उस आत्माके ज्ञानके सन्मुख स्वभावसे ही आए हुए पदार्थ अपनी यथार्थताको दिखलाते हुए माया और कपटके परदोंमें छिपे रहते हुए भी कभी भी चतुर चैतन्यको अचैतन्य नहीं कर सक्ते । ससारी अतरात्मा निज शुद्धात्म गुफा

जो स्वाभाविक धर्म है वह धर्मीसे भिन्न नहीं होता । अनत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य्य आत्माराममें सदा ही विद्यमान हैं । न कभी आवर्णित होते और न कभी खुलते हैं । स्वपदकी शुद्धताको ग्रहण करनेवाली शुद्धनय मुमुक्षुओंको ऐसा ही उपदेश करती है । यद्यपि व्यवहारनय इसी आत्माको कर्मसम्बन्धजनित भावोंसे लिप्त व कभी अलिप्त कहती है, परन्तु जो स्वसमाधिमें लीन हो उपयोगका चुल्लुओंसे निज सुधामय सरोवरसे स्वामृतका पान करते हैं उनको नयोंका विकल्प आकुलित नहीं करता । अनत धर्मोंका धनी जो आत्माराम है उसका प्रत्येक समयमें उसके अनत गुणों करके सहित अनुभवका रस वेदना उसी प्रकारसे हुआ करता है, जिस तरह एक सहस्रजडी बूटियोंसे बनी गोलीका रस किसी औषधि सेवीको हो । जबतक अद्वैतताका परम स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता तबतक यह ध्याता ध्येयको ध्याता हुआ औषधि सेवीके रसानुभवके समान आचरण करता है । परम स्वास्थ्य लाभ करनेपर यह स्वय रस-सागर हो जाता है और अपनी अव्यक्त तरगोंमें आप ही रजित रहता हुआ कभी भी अपने सत्वको स्वभावसे प्रतिकूल नहीं करता । यद्यपि अननदर्शन आत्माका स्वभाव है तथापि ससारी आत्माओंके चारित्रोंको देखते हुए, उनके इस स्वभावकी प्रगटता भिन्न २ रूपसे हो रही है । चौइन्द्री और पंचेन्द्री जीव तो चक्षुदर्शनावरणीकर्म-के क्षयोपशमद्वारा चक्षुदर्शनसे अपने नेत्रोंसे रूपी पदार्थोंका सामा-न्य अवलोकन करते हुए भी उसका विशेष समाचार अपने मति-ज्ञान और फिर श्रुतज्ञानके द्वारा ही जानते है । वस्तु सामान्य—विशे-

होना एक वडा कष्ट समझता है और अपने प्रशासनीय संयम भावसे शुक्लध्यानको ध्याता हुआ निश्चय स्वरूपके स्वादमें आनन्दित हुआ करता है । मात्र एक संज्वलन लोभ की झलक अंतरात्माके निकट रह जाती है, तब यह सूक्ष्म सांपराय संयमको हासिलकर ध्यानकी दृढतासे मोहवीरको हनन कर **यथाख्यात संयमको** प्राप्त कर लेता है और तब जो निजध्येय में द्वैततारहित आ स्थित हो जाता है तो फिर अनंतानंत कालके लिये भी निज स्वभावको छोडता नहीं है । त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य विकल्पोंसे अलग रह यह आत्मद्रव्य स्वात्माको ही निजा त्माके द्वारा निजानन्द अनुभवके लिये ध्याता हुआ निजसे निजकी प्रगटताको निजमें पाता हुआ ऐसा जगके प्रसारोंसे गुप्त हो जाता है कि फिर कभी भी नहीं लौटता है तथा निर्मल स्फटिकमई वीतरागमय शय्यापर लेटा हुआ ऐसा आत्मनिद्रित हो जाता है कि हरएक सम यहींमें विच्छेदरहित अनुभवानन्दको भोग सदाके लिये अतृप्त रहता है ।

दर्शनमार्गणाका अवलोकन ।

(४९)

परपद–उन्मुखता–धारी, निज सन्मुखताकारी, अविकारी, मनमथ मद–हरतारीकी शांतिमय प्रतिमा भव–तिमिरको नष्ट करती हुई निज गुण पर्यायोंमें ऐसी चमत्कारिता प्रदर्शित कर रही है कि जिसकी आभाके सामने कोटि सूर्य्य और चन्द्र लज्जायमान होते है । जिसका

लेश्यामार्गणामें भवभ्रमण।

(९०)

निष्कपाय, निरावरण, निर्लेप, निर्लेश्य, निर्द्वन्द्व, निराकार, सत-
ी, समाधि—तत्रलीन, सर्व दोषहीन, अक्षीण, निजगुण—रत्नाकराधीन,
मीचीन चैतन्य स्वरूपके अनुभवकी रागनी इस भव्य जीवके रोए
एको प्रफुल्लित कर रही है और आत्माको मकप करती हुई
समाधि भक्तिमें ऐसी अनुरागिणी कर रही है कि, यह आत्मा पुण्य-
कर्मोंको अतिशय रूपबंध करता हुआ भी अबध, अकर्म, सिद्ध-
स्वरूपकी उपलब्धिमें अत्यन्त विव्हल हो रहा है। यह स्वरूप-
खोजी समारके सकल्प, विकल्प स्वरूप कटकमय वृक्षोंके बनोंसे
गकर आम्रफलोंसे पूरित सघन स्वगुण वृक्षोंकी आत्मसत्तारूप
ाटिकाकी छायामें जाता है और एकान्तताकी अनुपम सुगन्धको
लेता हुआ ऐसा मग्न हो जाता है कि सर्व समारको भुगकर एक
अपूर्व ससारातीत वस्तुकी भावना करता हुआ परमानन्द रसका वेदन
करता है। धन्य है। यह सतोषी आत्मा जो बड़ी कठिनतासे निज
ुधा—समुद्रके तटपर आया है। इसकी आत्मपरिणति ऐसे मद
षायसे लिप्त है कि शुक्लेश्याकी महिमाको प्रगट कर रही है।
जो जीव बैरधारी, भडक्रिया—स्वभावी, हिंसापरायण, दुष्ट, हठी,
स्वतन्त्रमार्गी पर नाशमें हर्षित चित्त होते हैं वे कृष्णलेश्याके धारी
होकर मात्र आम्रफलकी इच्छासे सम्पूर्ण आम वृक्षको जड मूल
उखाडनेवालेके समान परिणाम धारकर तीव्र कर्मका बधकर नारकी
तिर्यंच व कभी दुष्ट नर और भवनत्रिक हो जाते है। खेद है

पात्मक है। सामान्यका अवलोकनरूप ग्रहण आत्माका दर्शन गुण करता है और विशेषका जानना ज्ञानगुणके आधीन है। खेद है यह चक्षुदर्शन अरूपी आत्मारामके अवलोकनसे वंचित रहता है। एकेन्द्रीसे पचेन्द्री असैनी तकके जीव अचक्षुदर्शनावरणा कर्मके क्षयोपशमके कारण अचक्षुदर्शनके द्वारा रूपी पदार्थोंका स्पर्श, रस घ्राण और श्रोत्रइन्द्रियोंसे अवलोकन कर लेते है, परन्तु अरूपी निजवस्तुके दर्शनमें अपनी गतिको नहीं पाते। जो पचेन्द्री मन सहित होते है—वे अरूपी पदार्थोंके दर्शनमें भी शक्तिमान् होते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन—मित्रकी सहाय बिना अपने आत्मस्वरूपको देख नहीं सक्ते। जो जीव अवधिदर्शनकी लब्धिसहित होते है, वे दूरवर्ती परमाणुसे महास्कध पर्यन्त रूपी पदार्थोंको ही ही देख सक्ते हैं, परन्तु उसके द्वारा अरूपी आत्माके दर्शन करनेमें शक्तिमान नहीं होते। धन्य है! केवलदर्शन, जो एक समयमें लोक अलोकको देखता है। यह केवलज्ञानी अरहतकी शक्तिकी अपूर्वता ही है जो केवलीके अनतगुण एक समयमें ही अपना कार्य्य करते है। जिस समय केवलदर्शन देखता और केवलज्ञान जानता है उसी समय केवली निजस्वरूपानन्दी वस्तुका स्वाद लेते रहते है। दर्शनमार्गणामें भेदोंकी कल्पनारूप आत्माओंका अवलोकन होता है, परन्तु दर्शनमार्गणारहित अवस्थामें इस मार्गणाका कहीं भी चिन्ह नहीं होता। शुद्धबुद्ध निराकुल पद—आरोही आत्मा अभेदरूप रह निज स्वसवेदन सिंहासनपर तिष्ठा हुआ अपनी मनोहारी यथार्थताका अनुभव करता हुआ ऐसा स्वरूप मगन रहता है कि निज अनुभवानन्दके लाभको कभी भी त्यागता नहीं।

मनुष्योंमें बलभद्र, चक्रवर्ती तक होते हैं । परन्तु जो सम्यक्दृष्टि होतेहैं–वे ही साक्षात् आत्मानदका रस वेदते हैं । जो जीव त्यागी, भद्रपरिणामी, सुकर्मकर्त्ता, क्षमाशील तथा साधु पुरुषोंकी भक्तिमें रत होते है, वे जीव आम्रफलोंको तोडकर खानेवालेके समान पद्मलेश्यावान् हो सुकृत बाध मर कर तीसरे स्वर्गसे १२ वें स्वर्ग पर्यंत पैदा होते हैं । सम्यक्तकी कृपा हुई तो सहजानदकी मिठाई भी खाते है । जो जीव पक्षपात और निदानरहित स्नेह होते हुए भी राग द्वेषके त्यागी सर्व पर समभावी होते हैं, वे जीव जमीनपर पडे हुए आम्रोंको खानेके इच्छुकके समान शुक्लेश्यावान् हो ११ वें स्वर्गसे सर्वार्थसिद्ध तकमें जाकर ९ ग्रीवकके ऊपर तो सर्व ही निरन्तर स्वात्मानंदका स्वाद लेते हुए द्रव्योंकी चर्चामें रत रहते हैं । धन्य हैं वे जीव जो क्षपकश्रेणी चढ शुक्लेश्याधार १४ वें गुणस्थानमें अलेश्य हो पर्याय त्याग लोकाग्र जा सिद्ध भावके अमल अतीन्द्रिय सुखको भोगते हुए लेश्यामार्गणासे सर्वथा सर्व कालके लिये भिन्न हो निर्मल फटिक घटमें भरित निज-सुधाका स्वाद ले परम अनुभवानंदमें तृप्त रहते है ।

भव्याभव्य विकल्प न करना ।

(९१)

भवदधि–नौकाधारी, स्वप्रताप–विस्तारी अविकारी आज अत्यन्त प्रसन्न वदन हो शीघ्र २ भवसमुद्रके दु खरूप खार जलको पार क–

इनको आनन्द धाम, शिवराम, अभिरामकी खबर तक नहीं होती और यदि सम्यक्तके कारण किसी की श्रद्धामें कभी होती भी है तो वह निरतर अनुभवमें प्रवृत्ति नहीं रखती। जो जीव निर्बुद्धि, विषयलेलुपी, मानी, मायाचारी आलसी, निद्रालु, धन, धान्यके तीव्रानुरागी आम्रफलके लिये आम्रवृक्षके स्कन्धको तोडनेके उत्सुकके समान परिणामधारी होते है। वे जीव नीललेश्या स्वभावी होकर तिर्यंच दुष्ट मनुष्य व भवनत्रिक देव हो वा पचम नरक तक जाकर दुःख ही को भोगते हैं, परन्तु स्वात्माधीन सुखके नित्य अनुभवसे छूटे रहते है। जो जीव रोप-धारी, परनिन्दक, पर दोप, आरोपक-शोकी, भयभीत, आत्मप्रशसी अश्रद्धालु, खुशामद-प्रिय, हानि वृद्धिअजान, स्तुति किये जानेश्र रणमें मरणको उद्यत तथा अपना सर्वस्व दे देनेवाले व निज कार्य्य अकार्य्यको न गिननेवाले हेते हैं। वे जीव आम्रवृक्षके लिये आम्रफल युक्त बडी शाखाके तोडनेके अभिलापीके समान परिणामकर कापोत-लेश्यासे कर्मबद करते हुए भवनत्रिक देव, नर, तिर्यंचसे ले तीसरे नरक तक जाकर दु.ख ही का अनुभव करते है और जो कोई जीव काललब्धिकी निकटतासे सम्यक्तधारी असयत होते हैं, वे कुछ आत्मसुखकी श्रद्धासे साता भावका भी उपयोग कर लेते है। पुण्यके उदयसे जो जीव कार्य्य, अकार्य्य, सेव्य, असेव्यके ज्ञाता होते, सर्वको समदृष्टिसे देखते, दयादानमें रत और कोमल स्वभावी होते है, वे जीव आम्रफलके आम्रकी छोटी डाली तोडनेके उत्सुकके समान तेजोलेश्याके धारी हो पुण्य बाध चौथे स्वर्ग तक जाकर इन्द्र व ऋद्धिधारी देव होते

न्य जीव राशि युक्तानन्तकी संख्यारूप ही है और शेष भव्यराशि है तथापि अनन्तानन्त भव्य जीवोंमें निकट भव्यता पाना अत्यन्त दुर्लभ है । क्या शुद्ध सुवर्ण होनेकी योग्यता रखनेवाला सर्व ही सुवर्णका पाषाण सुवर्ण हो जाता है ? कभी नहीं, उसी प्रकार आसन्न भव्योंका परिमाण लघु है । सर्वज्ञ वीतरागके वचन प्रमाणभूत हैं, क्योंकि वीतराग सर्वज्ञ अन्यथावादी नहीं हो सक्ते हैं । इस आगम प्रमाणके द्वारा भव्यमार्गणाका स्वरूप जानकर जो इस बातके विकल्पमें नहीं पडते कि हम भव्य हैं या अभव्य, किन्तु पुरुषार्थकी डोर हाथमें ले धर्म अश्वपर आरूढ हो चले जाते हैं । वे ही वीर पुरुषार्थी हैं । वे यदि अभव्य भी हुए तो नौ ग्रीवक तककी सैर कर आते हैं और जो भव्य हुए तो साक्षात् आत्माधीन आनन्दका विलाभ पाते हुए अनमें अनत सुखके धनी हो जाते हैं । बाह्यमें मुनि सदृश नन पाल्ते हुए यथार्थ परोपदेश करते हुए, मैं आत्मभावना करता हू यह भी ज्ञान रखते हुए, जो अतरगमें मिथ्यात्त्व कर्मकी प्रबलतासे विषय लालसाका रग नहीं छुडा सक्ते तथा अतीन्द्रिय सुखकी जातिको नहीं पहिचान सक्ते वे द्रव्यलिंगी मुनि अपने पुण्यके फलसे ही अपनी विषय खाज खुजाया करते हैं । परन्तु धन्य हैं। भावलिंगी भव्य साधु जो भव्यमार्गणा आदि विभाव विकल्पोंसे सर्वथा पृथक् रह निज रससुधा-समुद्रमें मग्न हो तीन-रत्नको निकाल अपने अनुभव मुकुटमें जडकर ऐसे शोभायमान होते हैं कि मानो मोक्षकन्याके वरनेके उत्सुक वर ही हैं । जो भव्य सुरस समाधिमें प्रवीण हैं वे ही सर्व क्षणभगुर सुखोंसे बाह्य अविनाशी अनुभवामृतका स्वाद ले परम सतोषित रहते हैं ।

रता हुआ नवशिवद्वीपको बढा चला जा रहा है । इसका भवसमु द्र इसीके घटरूप मध्यलोकमें विराजित है, सम्यक्तरूपी नौकाके द्वारा यह भव्यात्मा पाप पुण्यरूप जलको हटाता हुआ भावोंकी वि-शुद्धतारूप शीघ्र गतिसे भवदधि–तटके निकट चला जा रहा है। इसकी वीतराग स्वसवेदनजन्य अनुभूति तिया इसके कठमें सुकरको क्षेपे हुए आनदरूप मद सुगध पवनकी गतियोंसे इसको उन्मत्तताकी दशामें देख तथा आप भी उन्मादी होती हुई एकाग्रताके भावमें स म्पूर्ण जगत्को विस्मरण करती व कराती हुई शिवानन्दका आल्हाद मना रही है । मध्य मध्यमें परम मिष्ट ध्वनिके साथ अनुभूति तिया "सोहं" का गान गाती है और चेतनाराम स्वरूप भावनाका हार-मोनियम बजा तानमें तान मिला एक तान गतिकी महिमाको वि-स्तार कर रहे है । अनुभूति तियाकी सखियें उपशमता, सवेगता, वैराग्यता, आस्तिक्यता, भक्ति, वात्सल्यता, अनुकपा, क्षमा आदि चेतनाराम और अनुभूतिकी रक्षामें भले प्रकार दत्तचित्त है, बारम्बार सेवा और वैय्यावृत्य करके अपनी हार्दिक प्रीति प्रगट कर रहीं हैं। धन्य है! वे जीव जो दु ख सागरमें स्वधनको लूटनेवाले पचेन्द्रिय वि-षयरूपी चोरोंके बृहत् जालमय–जहाजके आक्रमणसे अपने यानकी रक्षा करते हुए तीव्र कषायोंकी पवनोंसे उसे बचाते हुए परम हर्षमें स्वकार्य्यके सन्मुख हो रहे है । यही अत्यन्त निकट भव्य जीव हैं। इनके आत्माओंमें शुद्ध होनेकी योग्यता अनादिकालसे थी और वह योग्यता अब अपने कार्य्यकी प्रगटतामें उद्यमवंत हो रही है तथा शीघ्रही पंचम धामके आनन्दको प्राप्त करायेगी । यद्यपि अम

विचारा तुरत मिथ्यादृष्टी होता है। यदि चारों योद्धाओंमेंसे किसीका दाव पड गया तो सासादन अवस्थामें आ कमसे कम एक समय उत्कृष्ट छ आवलीके बीचमें गिरता पडता मिथ्यात्वकी भूमिमें चला जाता है। यदि मिश्रमोहनीका वश चल पडा तो वह उपशम सम्यक्ती दही गुडके समान मिले हुए सम्यक्त मिथ्यात्व श्रद्धानमें अन्तर्मुहूर्तके लिये आजाता है और यदि कुछ मदतम पापके उदयसे सम्यक्त-मोहनीने ही पकड लिया तो सम्यक्तसे सर्वथा न गिरकर निर्मलभावसे चलमल अगाढ रूप श्रद्धाभावमें आजाता है और तब अपना नाम क्षयोपशम सम्यक्ती कहलाता है तथा इस भावको अधिकसे अधिक ६६ सागर और जघन्य एक अतमहूर्त तक नहीं छोडता है। शुद्ध-निश्चय–नय करके इस आत्माका सम्यक्दर्शन गुण स्वाभाविक है। परन्तु व्यवहारनय करके यही दर्शन–गुण अनादि व सादि दर्शन–मोह-नीके द्वारा सर्वथा आवर्णित रहनेसे मिथ्यात्वके नामसे कहलाता है। इसी तरह इसी एक दर्शनगुणके ही नाम सासादन, मिश्र, उपशम, और क्षयोपशम हो जाते है। और जब किसी क्षयोपशम सम्यक्तीको कर्म-भूमिके अन्दर पैदा होकर मनुष्यभवमें केवली व श्रुतकेवलीकी पर-मकार्यकारी संगति प्राप्ति होती है, तो वही दर्शन गुण मलीनता त्याग क्षायिक सम्यक्त कहलाता है। वास्तवमें यही गुण आत्माका व्यक्तरूप सम्यक्त गुण है। आश्चर्य है कि एक ही गुण पर द्रव्यके सम्बन्धके वशसे अपने छ नाम धरकर अपनी छ प्रकारकी अव-स्थाको बतलाता है। परन्तु धन्य है। इसका स्वाभाविक दर्शनगुण जब यह क्षायिक सम्यक्तकी अवस्थामें निर्मल हो जाता है तो

सम्यक्त मार्गणाकी झलक।

९२

परम धरम–धारी, निजाराम–विहारी, अविकारी, शुद्धस्वरूप सचारी, भवहारी, गुणसमूह–आधारी, रजित शिवनारी, आत्मानद-कारी भव्य आज धर्म ध्यान मेघ द्वारा वर्षित सुधा–सदृश जलका पान कर अनादि तृषाको मेट निज प्रियाकी भेंटको उद्यमवन्त हो रहा है। धन्य है! यह जीव जो मनसहित पर्याप्त जागृत सद्लेश्यावान् और ज्ञानी हो पापसे चित्त मोड जिनवाणीसे अनादिके अज्ञान बधनको तोड अपने कर्मोंकी स्थितिको अत कोडाकोडी सागर कर प्रायोग्य लब्धिद्वारा प्राप्त समय २ अनत गुण विशुद्धता करनेवाली कारण लब्धिकी महिमासे सम्यक्तको प्राप्तकर चुका है। इसको संसारमें अनादिसे रुलानेवाली मिथ्यात्व प्रकृति अपने चार सहकारी योद्धा अनतानुबधी कषायोंके साथ इसके पाससे दुबककर अलग बे काम बैठ गई है, परन्तु बैठे २ इसने अपने एक रूपके तीन रूप कर लिये हैं और दोके दो नाम भी रख लिये है जैसे मिश्रमोहनी और सम्यक्तमोहनी। यद्यपि मिथ्यात्त्व प्रकृति उपशम होगई है तथापि उसकी यह स्थिरता कमसे कम एक आवली और एक समय और अधिकसे अधिक एक समय कम ४८ मिनट ही रहती है। इस अतरमुहूर्तके समाप्त होते होते ही मिथ्यात्त्वके तीनों रूप और सहकारी चारों योद्धा अलग २ उस बिचारे आत्माके निर्मल परिणामको आक्रमण करनेकी चेष्टा करते है। यदि मिथ्यात्त्वका जोर लग गया तो वह

इस समदृष्टि धारीको अपनी एकाग्र दृष्टिसे हटा नहीं सके। जो निज स्वरूप परिणतिकी अटल सुदर्शन मेरुवत् अडिग श्रद्धामें लीन है, उनको न चक्रवर्तीकी सपदा और न अनेक उपसर्ग और परीषहोंकी युगपत् आपदा कभी विकारी बनाती है। अनेक सेवकों द्वारा गाई हुई प्रशसा व अनेक द्वेषियों द्वारा की हुई निन्दा उनके दृढ पर्वत समान उपयोगके ऊपरसे मेघधाराके समान बहकर चली जाती है। वे साधु महात्मा भव भव भ्रमणकारी कर्मचक्रके भीतर पुन प्रवेश होनेसे उन्मुख रहते हे। इनके अतरगमें स्वरूप स्वसवेदन धाराधर नित्य अमल अनुपम अमृतकी वर्षा किया करता है। जिस वर्षासे भवतापको हरते हुए ये भव्य जीव अपनी अंत करणकी स्वच्छ भूमिमें भेदज्ञान—बीज डाल आत्मध्यानरूपी अकुरको फुटा स्वात्मीक धर्मरूपी वृक्षको बढाते हैं, जिसके उत्तम क्षमारूपी शाखाओंमें कोमल मार्दवगुणरूपी पत्तोंको देख आर्जवगुणरूपी रगकी बहार ले शौचगुणरूपी निर्मलताईपर मोहित हो सत्यता पवनकी मद हिलोरोंका स्पर्श, सयम—परिणतिरूपी वृक्षकी सुडोल सघनताई पेख, तपरूप मनोहर पुष्पोंसे निकली हुई त्यागरूपी सुगधकी बास ले, आकिंचन्यरूपी भ्रमरोंकी मोहनेवाली तान सुन तथा ब्रह्मचर्य्यमई शीतल छायामें बैठ मुमुक्षु जीव रोमाञ्चबदन होते और ऐसे वृक्षकी संगतिसे परमशुद्ध कार्य्य समयसारके मिष्ट फलोंको पा उनका स्वाद ले अपनेको त्रिकाल विजयी जानते है। परन्तु खेद है कि, ऐसे सुखदाई वृक्षकी तरफ हमारे भ्राता अनतानत मन रहित असंज्ञी जीव किसीभी तरह पहुचनेकी योग्यता नहीं रखते। न वे शिक्षा ले सकते, न विचार पूर्वक

इस शिवतिया आशक्त जीवको अपनी प्राण—प्यारीके साक्षात् दर्शन करनेमें और उसके सभोगका आनद लेनेमें बहुत देर लगती नहीं। शिव—तिया सम्बन्धको मिलानेवाली स्वरूप स्वसम्वेदनरूप अद्भुत गुणको धारनेवाली अनुभूति सखी उसके ही साथ चिरकालके लिये हो जाती है और जघन्य-तया उसी ही भवसे अथवा तीसरे व चौथे भवसे उत्कृष्ट तेतीस सागर कुछ अधिकके भीतर ही उसे अटल धाममें पहुचा मगलमई हर्षनाद बजा शिव तियाको प्रफुल्लित करा अनुपम अपतित अमिट सम्बन्ध करा विश्राम लेती है। चेतनराम शुद्ध कानर्नमें जा अपनी प्रियासहित ऐसे तन्मय होते हैं कि फिर अनन्तकालमें भी उसकी एकताको त्यागते नहीं और सम्यक्तमार्गणाके जालसे रहित हो अपनी शुद्ध श्रद्धासे उत्पन्न भवानन्दोंसे अतीत अनुभवानंदका स्वाद ले परम तृप्त हो जाते हैं और ससार सन्मुख भावोंकी परिपाटीसे छुट्टी पा लेते हैं।

संज्ञी असंज्ञीकी कल्पना।

(९३)

परम—सुखकारी, समता आराम—विहारी, निज मुक्ति—तिय अटल भक्ति धारी, स्वसत्ता प्रेम सचारी चैतन्यनाथ अपने विमल स्फटिक मणिमय विशाल महलके ऊपर बैठा हुआ त्रिलोकमई आकाशकी छवि इस अनुपम वीतराग दृष्टिसे देख रहा है कि जो विचित्र पदार्थ ससारी इन्द्रिय—विषयाधीन व्यक्तियोंको कभी रागी, कभी द्वेषी, कभी मोही कभी शोकित, कभी आतुर, और कभी आकुलित बनाते हैं—वे ही पदार्थ

भावसे छूटा हुआ तीनोंके रससे प्रत्येक प्रदेशमें भीगा हुआ शुद्ध अनुभूतितियाके रमणमें उन्मत्त होता हुआ अपने आपमें सिद्ध-शिलका स्थान रखता हुआ वीतरागताकी मनोहर तरगोंसे उछलता हुआ ऐसा हर्पायमान हो रहा है कि जिसके हर्पके प्रकाशके सम्मुख आकुलताका अधकार विलयको प्राप्त हो गया है तथा चिरकालसे अप्राप्त जो अमृतमई शुद्ध स्वर समय व्यजन उनका लाभ ले तथा उनका स्वाद ले ऐसा पुष्ट हो रहा है कि जिससे इसकी आत्मामें अनुपम वीर्य्यका प्रादुर्भाव होता जाता है और पर पुद्गलमई आवरण अस्तभावको प्राप्त होता जाता है। यद्यपि यह आत्मा स्वय ही शुद्ध और सिद्ध है तथापि अनादि पर सम्बन्ध जनित कर्मोंके मिलापसे अशुद्ध हो रहा है। इस अशुद्धताके निमित्तसे ही निरन्तर द्रव्यकर्म और नोकर्मकी वर्गणाएं आत्माके निकट आती हे और जीवके सूक्ष्म तथा स्थूल शरीरोंमें प्रवेश कर जाती हैं । जबतक यह आत्मा योगरहित केवलज्ञानी अरहत नहीं होता तबतक कोई समय ऐसा शेप नहीं है, जिसमें यह आत्मा ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंको न आकर्पित करे। इसी कारण द्रव्यकर्मकी अपेक्षाको न गिनकर ही इस जीवको कभी आहारक और कभी अनाहारक कह दिया करते है। औदारिक, वैक्रियक, आहारक तथा भापा और मनोवर्गणाको आकर्पण करता है, इससे इस जीवका आहारक और जब इनको आकर्पण नहीं करता तब इसको अनाहारक कहते हैं। जो ससारी जीव स्थूल शरीरको तज अन्य स्थूल शरीरके लिये जाता है तब मध्यमें उसकी अव-

क्रिया कर सकते, न उपदेश सुन समझ सकते, न वार्तालाप कर अभिप्रायोंको बतला व जान सकते, न कार्य्य करनेके पहिले सुकार्य्य व अकार्य्यकी तर्कद्वारा पहिचानकर सके, न तत्त्व कुतत्त्वको मालूम कर सकते और न नामके द्वारा पुकारनेसे आसकते, वरनतो इन्द्रियावरण कर्मके आधीन रहकर इसी अज्ञान अवस्थामें पर्य्याय पूरी करते हैं। जो देव, नारकी, पशु तथा मनुष्य नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे इन सब कार्य्योंकी योग्यता रखते हुए मनसहित संज्ञी कहलाते हैं, उनमेंसे भी घनेरे मिथ्यात्त्वके वश पड़े उस धर्म–वृक्षके निकट नहीं जाते। धन्य हैं! वे अत्यन्त निकटभव्य, जो अपनी मानसिक शक्तिका सच्चा उपयोग विचार परमधर्मरूपी वृक्षकी सेवा करते २ ऐसे बेहोश होजाते हैं कि संज्ञी होते हुए भी संज्ञी असंज्ञी विकल्पसे दूर रह संज्ञीमार्गणासे अतीत परमतत्त्वकी भावना कर भवविकारी सुखोंसे विलक्षण अनुभवानंदका स्वाद ले परम उन्मत्तकी नाईं निज स्वरूपके आगनमें ही नित्य नृत्य किया करते हैं।

आहारक मार्गणाका विकल्प।

(९४)

स्वरूप–खोजी, समरस–भोजी, निज निःकटक राज्य संयोगी सम्यग्दृष्टी आत्मा अपार समुद्रवत् संसारकी भयावनी मूर्तिसे अत्रासित होता हुआ, निजको परमात्मा शुद्ध बुद्ध अविनाशी मानता हुआ, त्रिलोक–पतिपनेके महत्त्वसे अपनेको अतिशय प्रभावशाली लखता हुआ, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रके विकल्प

शशिपूर्ण कलाको लज्जित कर रहा है। निष्कलकताकी ध्वजा फहराता हुआ यह विशाल आत्ममदिर शिखर स्वस्वरूप स्थित अगुरुलघु गुणद्वारा पट्गुणी हानि वृद्धिसे ध्वजाकी हलन चलन करता हुआ अति आसन्न भव्य जीवोंको निज निकट आहवान कर रहा है। जो जीव स्वरूप सन्मुख होकर उस शशिमुखपर अपनी दृष्टिकी टकटकी लगाते है—वे जीव तापको मिटा शातताको पा शशिनिर्गत सुधा बिन्दुओंका पानकर स्वजन्म कृतार्थ करते है। जो जीव द्रव्यश्रुतके रसिक हों उसी रसके मदमें भरकर भावश्रुतको नहीं उपलब्ध करते है वे जीव वृथा ही बालू पेल तेलकी आशा करते है। जिस तत्त्वमें १४ गुणस्थान और १४ मार्गणा स्थानका प्रवेश नहीं है, जो तत्त्व सात नय और उपनयोंसे दूर है, जहा नामादि निक्षेपोंका व्यवहार नहीं हो सक्ता, उस तत्त्वकी हरी भरी शोभा ही मनको प्रसन्न करती और इस मनको एक क्षणके अन्दर अमन कर देती है। मनका अमन होना इन्द्रियोंको शून्य करता है और तब आत्माका उपयोगरूपी जल सर्व ओरसे सिमटकर आप थलमें आता है और अपनेमें स्वच्छ नदीकी धारा बनाता है। इस धारामें आप ही आप नहाता है, जलक्रीडा करता है, अनुभूति नारीके स्वच्छ तनपर स्वजलकी पिचकारिया छोडता है और चिरकाल तक रमता हुआ भी कभी थकता नहीं है। इसकी यह क्रीडा जगत्के भीतर लिप्त जी-

…इस क्रीडाकी बातको भी सुनकर अनसु-

…। जग—उदासी जीव जो अणुव्रत और

…रक्षाके लिये त्रिगुप्ति

स्थाको विग्रहगति कहते हैं। इस अवस्थामें तथा मूल परमौदारिक शरीरमें रहते हुए भी तीन लोकमें अपने आत्माको व्याप्त करानेवाले समुद्घात दशाके धारी केवलीमें अथवा अयोगकेवलीमें तथा श्रीसिद्ध जीवोंमें नोकर्मोंका प्रवेश नहीं होता। इससे इन नोकर्म ग्रहणरहित आत्माओंको अनाहारक कहते हैं, परन्तु यह सर्व कथन व्यवहार नयाधीन है। शुद्ध निश्चयनय करके आहा मार्गणाके विकल्पोंसे रहित नोकर्म और द्रव्यकर्मसे तीनों काल भी स्पर्शको नहीं प्राप्त करता हुआ यह टङ्कोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभा स्वसमाधिकी मनोहर नौकामें बैठा हुआ भवसमुद्रकी मंजिलको तय करता हुआ चला जा रहा है। मार्गमें कपाय–शत्रुओंके आक्र मणसे अपने चैतन्य धनकी रक्षा करता हुआ कभी भी प्रमादकी निद्रामें अचेत नहीं होता है। पथका काल अत्यन्त विस्तारयुक्त होनेसे यह स्वरूपाशक्त उपशम भावके शात जलको तथा समता भावके मिष्ट स्वादिष्ट आहरको जो उसको उसी नौकामें प्राप्त होते है ग्रहण करता हुआ मुक्तदीपकी ओर दृष्टि लगाए हुए सोहंकी सुरीली तान गाता हुआ भवके क्षणिक सुखोंसे अतीत अनुभ वानदका उपभोग करता हुआ परम तृप्तताका लाभ कर रहा है।

पंच व्रतोंकी छटा।

(९९)

अवध, अकल, अरूपी, अजर, अमर, अनूपी, अटूट आनन्द स्वरूपी आत्मा आज अपनी अनोखी आभाके आकाशमें आभास करता हुआ

मोहतमनाशक स्वपरप्रकाशक अनुभव कर रहा है। आत्मप-
यद्यपि अरूपी इन्द्रियोंसे अतीत है तथा मनके भी अगोचर है,
जैसे कोई आम्रफलका स्वरूप परके द्वारा जान आमके गुणोंका
प्रकार निश्चय कर जब उस आमके रसका स्वाद लेता है अर्थात्
अपने उपयोगको रसके साथ एकतारूप करता है तब उसकी
ण मिष्टताका अनुभव करता हुआ उसके रसमें मोह होनेके
। साता मानता है। वैसे ही यह तत्त्वज्ञानी प्रमाण नयोंके द्वारा
ाके स्वरूपको यथार्थ ज्ञान निश्चय करता है और तब अपने
ाक आत्माके उपयोगको इन्द्रिय-ग्राम और मन-मर्कटसे पृथ-
परमशुद्ध परम पारिणामिक भावके धनी कारण परमात्मामें
देता है। पुद्गल परमाणुओंके बंधमें जैसे दो गुण अधिक स्निग्धता
ाता कारण है वैसे ही इन अमूर्तीक शुद्ध भावोंके परस्पर बंधमें
रूप उज्वलता कारण है। इस अपूर्व सम्बन्धके होनेमें ही
ानकी कला क्रीडा कलाप करती हैं और जैसे चन्द्रकला और
ान्ति मणिका संयोग जलरूप रसको उत्पन्न करता है वैसे ही
समतासे रजायमान होता हुआ उपयोग साम्यता और शान्त-
ुञ्ज श्री कारण परमब्रह्ममें संयोग करता है तो अपूर्व अनुपम
धासे विलक्षण परम स्वादिष्ट अमृत-रसकी धारा बहने
परम अनुभव रस है। इसी रसके भोगनेवालेको
होता है। जो इस सुखमय धाराका शान्त
अजर अमर हो जाते हैं। उसी स्वरूपके
सिद्ध अचल परमात्मा अनीन्द्रिय

गुप्तताका ऐसा एक मनोहर वृत्त बनाते है कि जिसके भीतर किसी विभाव भावका प्रवेश नहीं होने पाता। स्वभावका स्वभावमय रहना ही अहिंसा है, स्वभावका स्थिर हो विकारी न होना ही असत्य त्याग सत्यता है। स्वभावमें किसीपर चैतन्य और अचैतन्यके अनत गुण और पर्य्यायोंका एक अशमात्र भी लेकर न धरना ही चौरीत्याग अचौर्य्यता है, स्वभावमें स्वरूप सत्तारूपी तियाकी गाढ़ प्रीतिके सिवाय अन्य किसी देवी, मनुष्यणी, तिर्यचनी, काष्ठा पाषाण चित्रकी स्त्रीकी अनुरक्तताका न होना ही और जाति अपेक्षा लोक-व्यापी निज ब्रह्ममें आचरण करना ही मैथुनत्याग ब्रह्मचर्य्य अवस्था है। तथा स्वभावमें निज सुधा-समूह धनके अतिरिक्त सर्व अतरग वहिरग परिग्रहका लेशमात्र भी ससर्ग न करना ही परिग्रह त्याग अपरिग्रहता है। एक निज स्वभावमें ही पाचों व्रतोंको पा यह सयमी व्यवहारक अभूतार्थ जालसे पृथक् रह निजमें निज मगनता गह सदा भवसुखोंसे विलक्षण अनुभवानन्दका अनुपम रस पान किया करता है।

अनुभव सुख ही सार है।

(९६)

परमसुखदाई, सहज स्वरूप-फलदाई, स्वात्ममननकारी भव्य जीव परम स्वरूपाचरण चारित्रका लाभ कर अपनेको भव-वनमें एक अकेला कोटि सूर्यसम प्रभावान् परम तेजस्वी अनन्त दर्शन ज्ञान सुख वीर्यका

धनी मोहतमनाशक स्वपरप्रकाशक अनुभव कर रहा है। आत्मपदार्थ यद्यपि अरूपी इन्द्रियोंसे अतीत है तथा मनके भी अगोचर है, परन्तु जैसे कोई आम्रफलका स्वरूप परके द्वारा जान आमके गुणोंका भले प्रकार निश्चय कर जब उस आमके रसका स्वाद लेता है अथात् जब अपने उपयोगको रसके साथ एकतारूप करता है तब उसकी विलक्षण मिष्टताका अनुभव करता हुआ उसके रसमें मोह होनेके कारण साता मानता है। वैसे ही यह तत्त्वज्ञानी प्रमाण नयोंके द्वारा आत्माके स्वरूपको यथार्थ जान निश्चय करता है और तब अपने अमूर्तीक आत्माके उपयोगको इन्द्रिय–ग्राम और मन–मर्कटसे पृथक्कर परमशुद्ध परम पारिणामिक भावके धनी कारण परमात्मामें जोड देता है। पुद्गल परमाणुओंके बधमें जैसे दो गुण अधिक स्निग्धता व रूक्षता कारण है वैसे ही इन अमूर्तीक शुद्ध भावोंके परस्पर बधमें स्वस्वरूप उज्वलना कारण है। इस अपूर्व सम्बन्धके होनेमें ही अनुभवकी कला क्रीडा कलाप करती है और जैसे चन्द्रकला और चन्द्रकान्ति मणिका सयोग जलरूप रसको उत्पन्न करता है वैसे ही जब स्वसमतासे रजायमान होता हुआ उपयोग साम्यता और शान्तताके पुञ्ज श्री कारण परमब्रह्ममें सयोग करता है तो अपूर्व अनुपम लौकिक सुधासे विलक्षण परम स्वादिष्ट अमृत–रसकी धारा बहने लगती है। यही परम अनुभव रस है। इसी रसके भोगनेवालेको अनुभवानन्दका विलास होता है। जो इस सुखमय धाराका शान्त जलपान करते हैं वे ही अजर अमर हो जाते हैं। उसी स्वरूपके एकाग्रतामें मैं शुद्ध निश्चयनयसे सिद्ध अचल परमात्मा अतीन्द्रिय

सुख भोगी हू। ऐसा गाढ निश्चय झलकाकर सम्यग्दर्शन-रत्नका विकास कराता है। उसी ही स्वरूप समतामें संशय विमोह विभ्रम-रहित अपनी अनन्त गुण शक्तियोंका ज्ञान सम्यग्ज्ञानकी प्रादुर्भावना बताता है। उसी ही स्वसमाधिमें तन्मय होकर उसी तरह लिप्त हो जाना जैसे मधुमक्खी मधुके गोलेमें आसक्त हो जाती है, सम्यग्चारित्रकी सुन्दरता झलकाती है। व्यवहारनयसे यह तीन भिन्न २ नामधारी है, परन्तु निश्चयनयसे एक वहा चैतन्य मात्र ही द्रव्य है। यद्यपि ध्याता ध्येयके विकल्प समय दो चैतन्य गुणोंका सम्बन्ध है तथापि उस सम्बन्धके मध्यमें किसी अचैतन्यकी पहुच नहीं है। प्रथमावस्थामें यह विकल्प रह क्रमश दोनोंका ऐसा संघात हो जाता है कि निर्विकल्पताका समा छा जाता है। उस समय द्वैतभाव हट जाता है, अद्वैतताका रग आजाता है। उस कालके अगाध आनन्दको या तो त्रिलोक और त्रिकाल वेदी सर्वज्ञ ही जानते है या वह ध्यान-चक्रका धनी जानता है। जगतमें मार्ग-खोजी आत्माओंको निश्चय करना चाहिये कि यही त्रिलोकमें सार है, अन्यथा-सर्व ससार असार है यही मार्ग निराकुल आनन्दका स्रोत और भवोदधिका पोत है शिवरमणीके महलमें जानेका यही पथ है। इसीके सहारे सुख सागरके मध्यमें स्थित मुक्तिदीपमें जा पहुचता है और तब अनन्त कालके लिये अनुभवानन्दमें लीन हो जाता है।

इतिश्री अनन्तसुखार्णवे अनुभवानन्द प्रकरण समाप्त